वार्षिक रु. ६०.०० मूल्य रु. ८.००

विवेक-ज्योति

वर्ष ४७ अंक २ फरवरी २००९

रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ. ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २००९

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४७
अंक २

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर; आजीवन २०० डॉलर (हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

(सदस्यता -शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन २५४६६०३)

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्य

(२७ वीं तालिका)

११६०. श्री एस. के मुखर्जी, एफ-१६, गुड़गाँव (हरियाणा)
११६१. श्री शरत कुमार कर, डालमण्डप साही, पुरी (उड़ीसा)
११६२. डॉ. एस.एन. सुब्बाराव, दीनदयाल उपा. मार्ग, नई दिल्ली
११६३. डॉ.सत्यजीत साहू, दीनदयाल उपा. नगर, रायपुर (छ.ग.)
११६४. श्री शिव कुमार शास्त्री, जयस्तम्भ, राजनाँदगाँव (छ.ग.)
११६५. श्री महेश कुमार अग्रवाल, सन्तरा बाड़ी, दुर्ग (छ.ग.)
११६६. टी.आई.टी. ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूट, पिपलानी, भोपाल (म.प्र.)
११६७. श्री सुरेश व्यास, समदड़ी, जिला-बाड़मेर (राजस्थान)
११६८. श्री जगदीश प्रसाद दुबे, कालानी नगर, इन्दौर (म.प्र.)
११६९. टी.आई.टी. एण्ड एस., पो. पिपलानी, भोपाल (म.प्र.)
११७०. टी.आई.टी. (एक्सेलेन्स) पो. पिपलानी, भोपाल (म.प्र.)
११७१. स्वामी श्रीकान्तानन्द, रामकृष्ण मठ, हैदराबाद (आं.प्र.)
११७२. श्री राजेन्द्र प्रसाद शुक्ला, करनाल (हरियाणा)
११७३. बिशुन प्रसाद देवांगन, पाटन, जिला – दुर्ग (छ.ग.)
११७४. स्वामी भक्तिरसानन्द, रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली
११७५. स्वामी आत्मभोलानन्द, भोपाल (म.प्र.)
११७६. श्री सतीश मुरलीधर पटवारी, जलगाँव (महाराष्ट्र)
११७७. श्री जे.पी. शर्मा, नानकपुरा, राजा पार्क, जयपुर (राज.)
११७८. श्री चन्दन पटेल, भनपुरी, रायपुर (छ.ग.)
११७९. श्रीमती रूपाली घोष, कन्टलदहा, हावड़ा (प. बंगाल)
११८०. श्री जे. ठाकुर, प्रताप नगर, भाभा नगर, कोटा (राज.)
११८१. डॉ. अंशुमन एन. चौहान, रेल टोली, गोन्दिया (महा.)
११८२. श्री रणजीत फुकोन, अस्पताल रोड, सिवसागर (असम)
११८३. स्वामी सिद्धिप्रदानन्द, नारायणपुर (छ.ग.)
११८४. श्री अरुण चटर्जी, तेलीबाँधा, रायपुर (छ.ग.)
११८५. श्री पी. एन. शर्मा, कोसाबाड़ी, कोरबा (छ.ग.)
११८६. श्री गौतम बनर्जी, कानपुर रोड, लखनऊ (उ.प्र.)
११८७. डॉ. धुव्रा बनर्जी, टी.पी. नगर, कोरबा (छ.ग.)
११८८. बाबा गरीब दास, तेलघानी नाका, रायपुर (छ.ग.)
११८९. श्री विमल एम. अग्रवाल, इरिस पार्क, जूहू, मुम्बई (महा.)
११९०. श्री जयेश सकलानी, दयानन्द विहार, दिल्ली – ११० ०९२
११९१. श्री सुभाष मधुकर, सेक्टर – ४६, फरीदाबाद (हरियाणा)
११९२. डॉ. ए. के. बटौलिया, जिला अस्पताल, अनूपपुर (म.प्र.)
११९३. डॉ. उदय चौरसिया, गोन्दिया (महा.)
११९४. श्री टी. आर. वर्मा, आदर्श नगर, मोवा, रायपुर (छ.ग.)
११९५. श्री हरिवल्लभ जी पालीवाल, धोइन्दा, राजसमन्द (राज.)
११९६. श्री शशिकान्त देवरा, भट्टर रोड, सूरत (गुजरात)
११९७. श्री प्रमोद कुमार वर्मा, पचफेढ़ी नाका, रायपुर (छ.ग.)
११९८. स्वामी चन्द्रूराम महाराज, लखनऊ (उ.प्र.)
११९९. सयाजी सि. जु. सा. पुस्तकालय, तिलवाड़ा (गुजरात)

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है ।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो । पत्रिका के दो या अधिक से अधिक चार पृष्ठों में आ जाय । पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो । भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें ।

(३) लेख में आये उद्धरणों सन्दर्भ का पूरा विवरण दिया जाय ।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें । अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें ।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता । स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं ।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय ।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृति रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा ।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें । वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है ।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें । यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें ।

पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें ।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें । उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा ।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रूपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है । यह राशि प्रतिमाह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अत: इसे हमें मत भेजें ।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें ।

विवेक-चूडामणि

– श्री शंकराचार्य

वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्ठवम् ।
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते ।।५७।।

अन्वय – वीणायाः रूप-सौन्दर्यं तन्त्री-वादन-सौष्ठवम् प्रजा-रञ्जन-मात्रं, (तु) तत् साम्राज्याय न कल्पते ।

अर्थ – वीणा का सौंदर्य तथा उसे बजाने की निपुणता, लोगों को आनन्द देने के साधन मात्र हैं; उसके द्वारा साम्राज्य (मुक्ति) की उपलब्धि नहीं होती ।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये ।।५८।।

अन्वय – वैखरी वाग् शब्दझरी, शास्त्र-व्याख्यान कौशलं तद्वत् वैदुष्यं – विदुषां भुक्तये, तु न मुक्तये ।

अर्थ – भाषा का ज्ञान, शब्द-संयोजन की कुशलता, शास्त्रों की व्याख्या में नैपुण्य तथा इसी तरह की विद्वत्ता – विद्वानों की मुक्ति के नहीं, अपितु भोग के साधन हैं ।

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।।५९।।

अन्वय – परे तत्त्वे अविज्ञाते तु शास्त्राधीतिः निष्फला । परे तत्त्वे विज्ञाते अपि शास्त्राधीतिः तु निष्फला ।

अर्थ – जब तक पर-तत्त्व (ब्रह्म) का ज्ञान न हो, तो शास्त्र का अध्ययन निष्फल है; और पर-तत्त्व का ज्ञान हो जाय, तो भी शास्त्र का अध्ययन निष्फल ही है ।

शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् ।
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञैस्तत्त्वमात्मनः।।६०।।

अन्वय – शब्दजालं चित्त-भ्रमण-कारणं महा-अरण्यं, अतः तत्त्वज्ञैः आत्मनः तत्त्वम् प्रयत्नात् ज्ञातव्यम् ।

अर्थ – शब्दों का जाल रूपी शास्त्र चित्त को भ्रमित करने वाला विशाल वन है, अतः व्यक्ति को चाहिये कि वह ज्ञानी व्यक्ति के पास से प्रयासपूर्वक आत्मा का तत्त्व जान ले ।

अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना ।
किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रैः किमौषधैः।।६१।।

अन्वय – अज्ञान-सर्पदष्टस्य विना ब्रह्मज्ञान-औषधं, वेदैः च शास्त्रैः किमु च मन्त्रैः किमु औषधैः किम्?

अर्थ – जिस व्यक्ति को अज्ञान-रूपी सर्प ने डस लिया है, उसके लिये ब्रह्मज्ञान-रूपी औषधि को छोड़, वेदों तथा शास्त्रों से क्या लाभ? मंत्रों तथा औषधियों से क्या लाभ?

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः ।
विनाऽपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ।।६२।।

अन्वय – व्याधिः पानं विना औषधशब्दतः न गच्छति । (तद्वत्) अपरोक्ष-अनुभवं विना ब्रह्मशब्दैः मुच्यते न ।

अर्थ – औषधि का सेवन किये बिना, केवल औषधि शब्द का उच्चारण करने मात्र से रोग दूर नहीं होता, उसी प्रकार अपरोक्ष-अनुभूति हुए बिना केवल 'ब्रह्म' शब्द के उच्चारण मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ।

अकृत्वा दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मनः ।
ब्रह्मशब्दैः कुतो मुक्तिरुक्तिमात्रफलैर्नृणाम् ।।६३।।

अन्वय – दृश्यविलयं अकृत्वा (तथा) आत्मनः तत्त्वम् अज्ञात्वा, उक्तिमात्र-फलैः ब्रह्मशब्दैः नृणाम् कुतः मुक्तिः?

अर्थ – जगत् के दृश्य पदार्थों का विलय यानी मिथ्यात्व का बोध किये बिना और आत्मा का तत्त्व जाने बिना, 'ब्रह्म' शब्द का उच्चारण मात्र करने के फलस्वरूप व्यक्ति को भला मुक्ति कैसे मिल सकती है? अर्थात् नहीं मिल सकती ।

❖ (क्रमशः) ❖

दुनिया की सच्चाई

(एक तरुण के रूप में स्वामी विवेकानन्द को जगत् में जो कुछ दिखाई देता है, उस पर वे विचार करते हैं –)

(यमन–एकताल; तर्ज - सारे जहाँ से अच्छा)

ये भेद-भाव कैसे फैले हुए हैं सारे !
सब जीव इस जगत् में, बँधकर पड़े बिचारे ।।

बन्धन में ही हुआ है, प्राकट्य प्राणियों का,
प्रारब्ध के फलन से, है भाग्य सब जुटाता।
जिसने ये सृष्टि की है, इससे वही उबारे।।
ये भेद-भाव कैसे फैले हुए हैं सारे !
सब जीव इस जगत् में, बँधकर पड़े बिचारे ।।

राजा हो कोई नभ का, या रंक हो जमीं का,
सबमें मनुष्यता क्या, हमको दिखाई देता !
निज धर्म-जाति-भाषा, के भ्रम मिटें हमारे ।।
ये भेद-भाव कैसे फैले हुए हैं सारे !
सब जीव इस जगत् में, बँधकर पड़े बिचारे ।।

सबमें जो साँस चलती, वह वायु एक ही है,
सब प्राणियों के रग-रग, में लाल रक्त ही है ।
सब पर कृपा है उनकी, सब लोग उनके प्यारे।।
ये भेद-भाव कैसे फैले हुए हैं सारे !
सब जीव इस जगत् में, बँधकर पड़े बिचारे ।।

सबके हृदय में बैठा, वह आत्मतत्त्व निश्चल,
नित निर्विकार होकर, सब देखता है प्रतिपल ।
हम हैं भले बुरे या, क्या वह कभी विचारे !!
ये भेद-भाव कैसे फैले हुए हैं सारे !
सब जीव इस जगत् में, बँधकर पड़े बिचारे ।।

गढ़ते हैं भाग्य अपना, अपने ही हाथ से हम,
अब छोड़ हीनता को, कर भेदभाव उपशम ।
जागो हे वीर मानव, भगवान के दुलारे ।।
ये भेद-भाव कैसे फैले हुए हैं सारे !
सब जीव इस जगत् में, बँधकर पड़े बिचारे ।।

- *विदेह*

भारतीय नारियों का उत्थान

स्वामी विवेकानन्द

स्वामीजी की भारत सम्बन्धी उक्तियों का एक उत्कृष्ट संकलन कोलकाता के रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर ने My India, The India Eternal शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत है उन्हीं उक्तियों का हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

श्रीरामकृष्ण को देखा है – सभी स्त्रियों के प्रति मातृभाव, चाहे वह किसी भी जाति की कैसी भी स्त्री क्यों न हो। मैंने देखा है न, इसीलिये इतना समझकर तुम लोगों को वैसा ही बनने को कहता हूँ और बालिकाओं के लिये गाँव-गाँव में पाठशालायें खोलकर उन्हें शिक्षित बनाने के लिये कहता हूँ। स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगी, तभी तो उनकी सन्तानों द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति, भक्ति जाग उठेगी।[१४]

किस शास्त्र में ऐसी बात है कि स्त्रियाँ ज्ञान -भक्ति की अधिकारिणी नहीं होंगी? भारत का अध:पतन तभी से शुरू हुआ, जब पुरोहितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेदपाठ का अनधिकारी घोषित किया और साथ ही स्त्रियों के सारे अधिकार छीन लिये। नहीं तो, वैदिक युग में, उपनिषद् युग में मैत्रेयी, गार्गी आदि प्रात:स्मरणीय स्त्रियाँ ब्रह्म -विचार में ऋषितुल्य हो गयी हैं। हजार वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य को ब्रह्मज्ञान में शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी थी। इन आदर्श विदुषी स्त्रियों को जब उन दिनों अध्यात्म-ज्ञान का अधिकार था, तो फिर आज स्त्रियों को वह अधिकार क्यों न रहेगा? एक बार जो हुआ है, वह फिर अवश्य ही हो सकता है। इतिहास की पुनरावृत्ति हुआ करती है। स्त्रियों की पूजा करके ही सभी राष्ट्र बड़े बने हैं। जिस देश में, जिस राष्ट्र में, स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वह देश, वह राष्ट्र, न कभी बड़ा बन सका और न कभी बन सकेगा। तुम्हारे देश का जो इतना अध:पतन हुआ, उसका प्रधान कारण है इन शक्ति-मूर्तियों का अपमान। मनु ने कहा है – **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।** जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते है और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता है, वहाँ सारे कार्य तथा प्रयत्न असफल हो जाते हैं। जहाँ स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, वे दुखी रहती हैं; उस परिवार की, उस देश की उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। अत: पहले उन्हें उठाना होगा।[१५]

शिक्षा से नारियों की समस्याओं का समाधान

निश्चय ही ... उनकी बहुत-सी और गम्भीर समस्यायें हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है, जो जादू भरे शब्द 'शिक्षा' से हल न की जा सकती हो।[१६] पहले अपने स्त्रियों को शिक्षा दो और उन्हें उनकी स्थिति पर छोड़ दो, तब वे तुमसे बतायेंगी कि उनके लिये कौन-से सुधार आवश्यक है।[१७]

इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त होने पर स्त्रियाँ अपनी समस्याएँ स्वयं ही हल कर लेंगी। अब तक तो उन्होंने केवल असहाय अवस्था में दूसरों पर आश्रित हो जीवन बिताना और जरा भी अनिष्ट या संकट की आशंका होने पर आँसू बहाना ही सीखा है। पर अब दूसरी बातों के साथ-साथ उन्हें बहादुर भी बनना होगा। आज के जमाने में उनके लिये आत्म-रक्षा सीखना भी बहुत जरूरी हो गया है। देखो झाँसी की रानी कैसी महान् थीं।[१८]

हर नारी ऐसा कुछ सीखे, जिसके द्वारा वह जरूरत पड़ने पर अपना जीविकोपार्जन कर सके।[१९]

स्त्री-शिक्षा कैसी हो; प्रथम तो – हिन्दू स्त्री के लिये सतीत्व का अर्थ समझना सरल ही है; क्योंकि यह उसकी विरासत है, परम्परागत सम्पत्ति है। अत: सबसे पहले, भारतीय नारी के हृदय में यह ज्वलन्त आदर्श सर्वोपरि रहे, ताकि वे इतनी दृढ़चरित्र बन जायँ कि चाहे विवाहित हों या कुमारी, जीवन की हर अवस्था में, अपने सतीत्व से तिल भर भी डिगने की अपेक्षा, निडर भाव से जीवन की आहुति दे दें। अपने आदर्श की रक्षा के लिये अपने जीवन की भी बलि दे देना – यह क्या कम वीरता है?... साथ ही महिलाओं को विज्ञान एवं अन्य विषय, जिनसे कि केवल उनका ही नहीं, अन्य लोगों का भी हित हो, उन्हें सिखाये जायँ। यह जानकर कि परोपकार के लिये यह करना है, भारतीय नारी प्रसन्नता से और सरलतापूर्वक कोई भी विषय सीख लेगी।[२०]

"मैं बहुत चाहता हूँ कि हमारी स्त्रियों में अमेरिकी नारियों जितनी बौद्धिकता होती, परन्तु मैं उसे चारित्रिक पवित्रता के मूल्य पर कदापि नहीं चाहूँगा।[२१]

भारतीय नारी का आदर्श

सीता भारतीय आदर्श – भारतीय भावों की प्रतिनिधि हैं, मूर्तिमती भारतमाता हैं। हम नहीं जानते कि सीता सचमुच जन्मी थीं या नहीं, रामायण की कथा किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित है या कपोल-कल्पित। परन्तु यह सत्य है कि

हजारों वर्षों से सीता का चरित्र भारतीय राष्ट्र का आदर्श रहा है। ऐसी अन्य कोई पौराणिक कथा नहीं है, जिसने सीता के चरित्र की भाँति पूरे भारतीय राष्ट्र को आच्छादित और प्रभावित किया हो, उसके जीवन में इतनी गहराई तक प्रवेश किया हो, जो देश की नस-नस में, उसके रक्त की एक-एक बूँद में इतनी प्रवाहित हुई हो। भारत में जो कुछ पवित्र है, विशुद्ध है, जो कुछ पावन है, उस सबका 'सीता' शब्द से बोध हो जाता है। नारी में नारी-जनोचित जो भी गुण माने गये हैं, 'सीता' शब्द उन सबका परिचायक है। इसीलिये जब ब्राह्मण किसी कुल-वधू को आशीर्वाद देते हैं, तो कहते हैं – 'सीता बनो'। जब किसी बालिका को आशीर्वाद देते हैं, तो कहते हैं 'सीता बनो'। वे सब सीता की सन्तान हैं – जीवन में उनका एकमेव यही प्रयत्न होता है कि वे सीता बनें – सीता-सी शुद्ध, धीर, सर्वसहा, पति-परायणा और पतिव्रता बनें।... सीता इस भारतीय आदर्श की सच्ची प्रतिनिधि हैं। उनके हृदय में अत्याचारों के प्रतिशोध का विचार तक नहीं आया।[२२]

सीता के विषय में क्या कहा जाय! संसार के सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे विश्वास दिलाता हूँ कि तुम संसार के भावी साहित्य का भी मन्थन कर सकते हो, पर उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं पा सकोगे। सीता-चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिये एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् कई हो गये हैं, पर सीता दूसरी नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को जैसा होना चाहिये, सीता उनके लिये आदर्श हैं। स्त्री-चरित्र के जितने भारतीय आदर्श हैं, वे सब सीता के ही चरित्र से उद्भूत हैं और सारे भारतवर्ष में हजारों वर्षों से वे स्त्री-पुरुष-बालकों की पूजा पा रही हैं। महा-महिमामयी सीता, स्वयं पवित्रता से भी पवित्र, धैर्य एवं सहनशीलता का सर्वोच्च आदर्श सीता, सदा इसी भाव से पूजी जायेंगी। जिन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महादु:ख का जीवन व्यतीत किया, वे ही नित्य साध्वी, सदा शुद्ध-स्वभाव सीता, आदर्श पत्नी सीता, मनुष्य-लोक की आदर्श, देवलोक की भी आदर्श नारी, पुण्य-चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को भलीभाँति जानते हैं, इसलिये उनका विशेष वर्णन करने की जरूरत नहीं। चाहे हमारे सब पुराण नष्ट हो जायँ, यहाँ तक की हमारे वेद भी लुप्त हो जायँ, हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिये कालस्रोत में विलुप्त हो जाय, किन्तु मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो, जब तक भारत में अति ग्राम्य भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिन्दू रहेंगे, तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्थि-मज्जा में हो चुका है; हर हिन्दू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान हैं; हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी नारियों को आधुनिक भावों में रँगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं, यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी, तो वे सब असफल होंगी, जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियों से सीता के चरण-चिह्नों का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होगी, यही एकमात्र पथ है।[२३]

मैं जानता हूँ कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया है – चाहे उसने उसकी कल्पना ही की हो – नारी के प्रति उसका आदर पृथ्वी पर अद्वितीय है।[२४]

आधुनिक नारी का आदर्श

हमारी माँ (सारदा देवी) यद्यपि बाहर से समुद्र के समान प्रशान्त हैं, पर वे आध्यात्मिक शक्ति की एक विशाल आधार हैं। उनके आविर्भाव से भारतीय इतिहास का एक नवयुग शुरू हुआ है। उन्होंने अपने जीवन में जिन आदर्शों को प्रकट किया है और दूसरों को अपनाने के लिये प्रेरित किया है, वे भारतीय नारी की बन्धन-मुक्ति के हर प्रयास को संजीवित करने के साथ-ही सम्पूर्ण पृथ्वी की नारी-जाति को प्रभावित करते हुए उनके मन-प्राण में प्रविष्ट हो जायेंगे।[२५]

माताजी को केन्द्र बनाकर गंगा के पूर्व तट पर स्त्रियों के मठ की स्थापना करनी होगी। जैसे इस मठ में ब्रह्मचारी-साधु तैयार होंगे, वैसे ही उस पार के स्त्री-मठ में भी ब्रह्मचारिणी और साध्वी स्त्रियाँ तैयार होंगी।[२६]

माँ का स्वरूप तत्वत: क्या है तुम लोग अभी नहीं समझ सके हो – तुममें से एक भी नहीं। धीरे-धीरे जानोगे। भाई, शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधम, शक्तिहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि यहाँ शक्ति का अनादर होता है। उस महाशक्ति को भारत में पुन: जगाने के लिये ही माँ का आविर्भाव हुआ है और उन्हें केन्द्र बनाकर जगत् में फिर से गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारियों का जन्म होगा। भाई, अभी नहीं, धीरे-धीरे सब समझोगे। इसीलिये उनके मठ का होना पहले आवश्यक है। ... शक्ति की कृपा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप में क्या देख रहा हूँ? – शक्ति की उपासना। परन्तु वे उसकी उपासना अज्ञानवश करते हैं, इन्द्रिय-भोग द्वारा करते हैं। फिर जो पवित्रतापूर्वक सात्त्विक भाव द्वारा उसे पूजेंगे, उनका कितना कल्याण होगा! दिन-पर-दिन सब समझता जा रहा हूँ। मेरी आँखें खुलती जा रही हैं। अत: पहले माँ का मठ बनाना होगा। पहले माँ और उनकी पुत्रियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र – समझे?... भाई, नाराज न होना, तुम में से कोई भी अब तक माँ को समझ नहीं सका है। मुझ पर माँ की कृपा, बाप की कृपा से लाखगुनी है। माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिये सर्वोपरि है।... मुझे क्षमा करो, माँ के विषय में मैं थोड़ा कट्टर हूँ। माँ की आज्ञा होने पर उनके

वीरभद्र भूत-प्रेत कुछ भी कर सकते हैं।... अमेरिका के लिये प्रस्थान करने से पहले मैंने माँ को लिखा था कि वे मुझे आशीर्वाद दें। उनका आशीर्वाद आया और एक ही छलाँग में मैं समुद्र पार हो गया। इसी से समझ लो ! इस विकट जाड़े में मैं जगह-जगह भाषण दे रहा हूँ और विषम बाधाओं से लड़ रहा हूँ, ताकि माँ के मठ हेतु कुछ धन एकत्र हो सके।

बुढ़ापे में बाबूराम की माँ का बुद्धिलोप हुआ है, जीती-जागती दुर्गा को छोड़कर मिट्टी की दुर्गा पूजने चली है। भाई, विश्वास अनमोल धन है। जीती-जागती दुर्गा की पूजा न दिखाया, तो मेरा नाम नहीं। जब जमीन खरीद कर जीती-जागती दुर्गा – हमारी माँ को वहाँ ले जाकर बिठा दोगे, तभी मैं चैन की साँस लूँगा। उसके पहले मैं देश नहीं लौट रहा हूँ। जितनी जल्दी हो, करो। यदि रुपये भेज सकूँ, तो दम लेकर सुस्ताऊँ। तुम लोग साजो-सामान जुटाकर मेरा यह दुर्गोत्सव सम्पन्न कर दो, मैं जानूँ। गिरीश घोष माँ की खूब पूजा कर रहा है, वह धन्य है, उसका कुल धन्य है। भाई, माँ का स्मरण होने पर बीच-बीच में कहता हूँ, 'को राम:?' भाई, यही जो मैं कहता हूँ, इसी में मेरी कट्टरता है।[२७]

नारी मठ विषयक स्वामीजी के विचार

जहाँ पर स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, वे दु:खी रहती हैं; उस परिवार की, उस देश की उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। इसलिये पहले इन्हें ही उठाना होगा। इनके लिये आदर्श मठ की स्थापना करनी होगी।... जिस महामाया का रूप-रसात्मक बाह्य विकास मनुष्य को पागल बनाये रखता है, जिस माया का ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्यात्मक अन्तर्विकास मनुष्य को सर्वज्ञ, सिद्ध-संकल्प, ब्रह्मज्ञ बना देता है – उन प्रत्यक्ष मातृरूपा स्त्रियों की पूजा करने से मैंने कभी मना नहीं किया। **सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये** – प्रसन्न होने पर वह वर देनेवाली तथा मनुष्यों की मुक्ति का कारण होती है। इस महामाया को पूजा-प्रणाम द्वारा प्रसन्न किये बिना क्या मजाल कि ब्रह्मा, विष्णु तक उनके पंजे से छूटकर मुक्त हो जायँ? गृह-लक्ष्मियों की पूजा के उद्देश्य से, उनमें ब्रह्मविद्या के विकास के निमित्त उनके लिये मठ स्थापित करूँगा।...

अब भी श्रीरामकृष्ण की अनेक भक्तिमती शिष्याएँ हैं। उन्हें लेकर स्त्री-मठ का प्रारम्भ करूँगा। माताजी उनका केन्द्र बनेंगी। पहले उसमें श्रीरामकृष्ण के भक्तों की स्त्री-कन्यायें निवास करेंगी, क्योंकि वे उस स्त्री-मठ की उपकारिता आसानी से समझ सकेंगी। उसके बाद उन्हें देखकर अन्य गृहस्थ लोग भी इस महान् कार्य के सहायक बनेंगे।...

जगत् का कोई भी महान् कार्य त्याग के बिना नहीं हुआ है। वटवृक्ष का अंकुर देखकर कौन कह सकता है कि समय आने पर वह एक विराट् वृक्ष बनेगा? अभी तो इसी रूप में मठ की स्थापना करूँगा। फिर एकाध पीढ़ी के बाद देशवासी इस मठ की कद्र करने लगेंगे। जो विदेशी स्त्रियाँ मेरी शिष्या बनी हैं, ये ही इस कार्य में जीवन उत्सर्ग करेंगी। तुम लोग भय और कापुरुषता छोड़कर इस कार्य में लग जाओ और इस उच्च आदर्श को सभी के सामने रख दो। देखना, समय पर इसकी प्रभा से देश उज्ज्वल हो उठेगा।...

गंगाजी के उस पार एक विशाल भूखण्ड लिया जायेगा। उसमें अविवाहित कुमारियाँ तथा विधवा ब्रह्मचारिणियाँ भी रहेंगी। बीच-बीच में गृहस्थ घर की भक्तिमती स्त्रियाँ भी वहाँ आकर ठहर सकेंगी। इस मठ से पुरुषों का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। पुरुष-मठ के वृद्ध संन्यासी दूर से स्त्री-मठ का काम चलायेंगे। स्त्री-मठ में बच्चियों का एक स्कूल रहेगा। उसमें धर्मशास्त्र, साहित्य, संस्कृत व्याकरण और साथ ही थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी सिखायी जायेगी। सिलाई का काम, रसोई बनाना, घर-गृहस्थी के सभी नियम तथा शिशु-पालन आदि मोटे-मोटे विषयों की शिक्षा भी दी जायेगी। साथ ही जप, ध्यान, पूजा – ये सब तो शिक्षा के अंग रहेंगे ही। जो स्त्रियाँ घर छोड़कर हमेशा के लिये यहीं रह सकेंगी, उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध मठ की ओर से किया जायेगा। जो ऐसा नहीं कर सकेंगी, वे इस मठ में दैनिक छात्राओं के रूप में आकर अध्ययन कर सकेंगी। यदि सम्भव होगा तो मठ के अध्यक्ष की अनुमति से वे यहाँ पर रहेंगी और जितने दिन रहेंगी, भोजन भी पा सकेंगी। बालिकाओं से ब्रह्मचर्य-पालन कराने हेतु वृद्धा ब्रह्मचारिणियाँ छात्राओं की शिक्षा का भार लेंगी। ५-७ वर्ष तक इस मठ में शिक्षा पाने के बाद बालिकाओं के अभिभावक उनका विवाह कर सकेंगे। यदि कोई अधिकारिणी समझी जायेगी, तो अपने अभिभावकों की सम्मति लेकर चिर कौमार्य-व्रत का पालन करती हुई वहाँ ठहर सकेगी। जो स्त्रियाँ चिर कौमार्य व्रत का अवलम्बन करेंगी, वे ही समय पर मठ की शिक्षिकायें तथा प्रचारिकायें बन जायेंगी और गाँव-गाँव, नगर-नगर में शिक्षा-केन्द्र खोलकर स्त्रियों की शिक्षा के विस्तार की चेष्टा करेंगी। चरित्रवान तथा धर्म-भावापन्न प्रचारिकाओं द्वारा देश में यथार्थ स्त्री-शिक्षा का प्रसार होगा। वे स्त्री-मठ के सम्पर्क में जितने दिन रहेंगी, उतने दिन तक ब्रह्मचर्य की रक्षा करना इस मठ का अनिवार्य नियम होगा। धर्म-परायणता, त्याग और संयम यहाँ की छात्राओं के अलंकार होंगे और सेवा-धर्म उनके जीवन का व्रत होगा। इस प्रकार आदर्श जीवन को देखकर कौन उनका सम्मान न करेगा? कौन उन पर अविश्वास करेगा? देश की स्त्रियों का जीवन इस प्रकार गठित हो जाने पर ही तो तुम्हारे देश में सीता, सावित्री, गार्गी का फिर से आविर्भाव हो सकेगा? देशाचार के घोर बन्धन से प्राणहीन, स्पन्दनहीन बनकर तुम्हारी लड़कियाँ कितनी दयनीय बन गयी हैं, यह तुम एक बार पाश्चात्य देशों की यात्रा करने पर ही समझ सकोगे। स्त्रियों की इस दुर्दशा

के लिये तुम्हीं लोग जिम्मेदार हो। देश की स्त्रियों को पुन: जाग्रत करने का भार तुम्हीं पर है। इसीलिये तो मैं कह रहा हूँ कि काम में लग जाओ।...

उन्हें शिक्षा देकर छोड़ देना होगा। इसके बाद वे स्वयं ही सोच-समझकर जो उचित होगा, करेंगी। विवाह करके गृहस्थी में लग जाने पर भी वैसी लड़कियाँ अपने पतियों को उच्च भाव की प्रेरणा देंगी और वीर पुत्रों की जननी बनेंगी। परन्तु यह नियम रखना होगा कि स्त्री-मठ की छात्राओं के अभिभावक १५ वर्ष की आयु के पूर्व उनके विवाह का नाम नहीं लेंगे। ... इन विदुषी तथा कर्मठ बालिकाओं के लिये वरों की कमी न होगी। **दशमे कन्यका-प्राप्तिः** – इन बाल-विवाह मूलक वचनों पर आज समाज नहीं चल रहा है, चलेगा भी नहीं।[२८]

पुरुष हस्तक्षेप न करें

पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षा दो और बाकी उन्हीं पर छोड़ दो, वे ही तुम्हें बतायेंगी कि उनके लिये क्या सुधार जरूरी हैं।[२९] हमारा अधिकार केवल शिक्षा के प्रचार तक ही सीमित होगा। उन्हें ऐसी स्थिति में पहुँचा देना होगा, जहाँ वे अपनी समस्या को स्वयं अपने ढंग से सुलझा सकें। उनके लिये यह काम न कोई कर सकता है और न किसी को करना ही चाहिये। हमारी भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति इसे करने की क्षमता रखती हैं।[३०]

उन्नति के लिये सबसे पहले स्वाधीनता की जरूरत है। यदि तुममें से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री या अमुक बालक की मुक्ति के लिये कार्य करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न पर आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यही देता हूँ – क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम मुझसे ऐसा निरर्थक प्रश्न पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बार-बार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री-जाति के प्रश्न को हल करने के लिये अग्रसर होनेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर विधवा और हर स्त्री के भाग्य-विधाता भगवान हो? दूर रहो! अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी।[३१]

भारतीय नारियों के प्रति

इस देश की नारियों से भी मैं वही बात कहूँगा, जो पुरुषों से कहता हूँ। भारत में विश्वास करो और अपने भारतीय धर्म में विश्वास करो। शक्तिमान बनो, आशावान बनो, संकोच छोड़ो और याद रखो कि यदि हम विदेश से कोई वस्तु लेते हैं; तो उसके बदले में देने को संसार के किसी भी अन्य देश ... की तुलना में हिन्दू के पास अनन्त गुना अधिक है।[३२]

गौरी माँ कहाँ हैं? हजारों गौरी माताओं की आवश्यकता है, जिनमें उन्हीं के समान महान् एवं तेजोमय भाव हो।[३३]

भारत के लिये, विशेषकर नारी-समाज के लिये पुरुषों की अपेक्षा नारियों में एक सच्ची सिंहनी की आवश्यकता है।[३४]

पुरुष तथा नारी, दोनों ही आवश्यक हैं।... हजारों पुरुष तथा नारी चाहिये, जो अग्नि की भाँति हिमालय से कन्याकुमारी तथा उत्तरी से दक्षिणी ध्रुव तक पूरी दुनिया में फैल जायँ। वह बच्चों का खेल नहीं है और न उसके लिये समय ही है। जो बच्चों का खेल खेलना चाहते हैं, उन्हें इसी समय पृथक् हो जाना चाहिये, नहीं तो आगे उनके लिये बड़ी विपत्ति खड़ी हो जायेगी। हमें संगठन चाहिये, आलस्य को दूर कर दो, फैलो! फैलो! अग्नि की तरह चारों ओर फैल जाओ।[३५]

जगत् को प्रकाश कौन देगा? बलिदान भूतकाल से नियम रहा है और हाय! युगों तक इसे रहना है। संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।

विश्व के धर्म प्राणहीन हास्यास्पद वस्तु हो गये हैं। जगत् को जिस चीज की जरूरत है, वह है चरित्र। संसार को ऐसे लोग चाहिये, जिनका जीवन नि:स्वार्थ ज्वलन्त प्रेम का उदाहरण हो। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रभावी बना देगा।... 'साहसी' शब्द और उससे भी अधिक 'साहसी' कर्मों की हमें आवश्यकता है। उठो! उठो! संसार दु:ख से जल रहा है। क्या तुम सो सकते हो?[३६]

पाँच सौ पुरुषों के द्वारा भारत को जय करने में ५० वर्ष लग सकते हैं, परन्तु पाँच सौ नारियों के द्वारा यह मात्र कुछ सप्ताहों में ही सम्पन्न हो सकता है।[३७]

❖ (क्रमशः) ❖

सन्दर्भ-सूची –

१४. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९), खण्ड ६, पृ. १८५; **१५**. वही, खण्ड ६, पृ. १८१-८२; **१६**. वही, खण्ड ४, पृ. २६८; **१७**. वही, खण्ड १, पृ. २९७; **१८**. वही, खण्ड ८, पृ. २७७; **१९**. The Master as I Saw Him, निवेदिता, सं.१९७७, पृ. २६३; **२०**. वही, खण्ड ८, पृ. २७७-८; **२१**. वही, खण्ड १०, पृ. २१६; **२२**. वही, खण्ड ७, पृ. १४४-४५; **२३**. वही, खण्ड ५, पृ. १५०; **२४**. वही, खण्ड ४, पृ. २६८; **२५**. प्रबुद्ध भारत, वर्ष ७, पृ. ५०६; **२६**. वही, खण्ड ६, पृ. १८१; **२७**. वही, खण्ड २, पृ. ३६१-६२; **२८**. वही, खण्ड ६, पृ. १८२-८३; **२९**. वही, खण्ड १, पृ. २९७; **३०**. वही, खण्ड ४, पृ. २६७; **३१**. वही, खण्ड ५, पृ. १४१; **३२**. वही, खण्ड ४, पृ. २६९; **३३**. वही, खण्ड ३, पृ. ३६१; **३४**. वही, खण्ड ६, पृ. ३४९; **३५**. वही, खण्ड ३, पृ. ३०१-०२; **३६**. वही, खण्ड ४, पृ. ४०७-०८; **३७**. The Master as I Saw Him, निवेदिता, सं.१९७७, पृ. २६०

अवतार-रहस्य (१/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. के अप्रैल-मई में रामकृष्ण आश्रम, राजकोट के तत्त्वावधान में पण्डितजी के जो प्रवचन हुए थे, 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से इन्हें लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने।

भगवान शंकर ने सतीजी से कहा – हम कुम्भज अगस्त्य मुनि के आश्रम में कथा सुनने जा रहे हैं। सतीजी ने पूछा – "कथा सुनने कुम्भज – घड़े के बेटे के पास जा रहे हैं ! सारे वेद तो आपकी स्तुति करते हैं कि शंकरजी ज्ञान के अथाह समुद्र हैं।" उन्होंने उत्तर दिया – "सती, कुम्भज का अर्थ तुमने नहीं समझा? यह कुम्भज ऐसा है, जिसने समुद्र को पी लिया है। कथावाचक तो वही हो सकता है, जो समुद्र को घड़े में ला दे।" यही रहस्य है। शास्त्रों के विस्तार को जो समेटकर थोड़े में ला देता है, वही कुम्भज है। शंकरजी बोले – उनसे अच्छी कथा अन्य कौन सुना सकता है !

वे कैलाश से उतर करके नीचे दण्डकारण्य में अगस्त्य मुनि के आश्रम में आ गये। मुनि ने देखा कि भगवान शंकर पधारे हैं, तो गद्गद् हो गये। उन्होंने बड़े प्रेम से शंकरजी के साथ-साथ सतीजी का भी पूजन किया। पर पूजन का प्रभाव दोनों पर अलग अलग पड़ा। शंकरजी तो गद्गद् हो गये कि मैं कथा सुनने आया हूँ, पूजा तो वक्ता की होनी चाहिये, पर अगस्त्यजी कितने निरभिमानी हैं कि वे श्रोता की ही पूजा कर रहे हैं। अगस्त्यजी ने सोचा कि भगवान शिव ने कितनी कृपा की कि मुझे कथा कहने का अवसर दिया। परन्तु दक्षकुमारी पर इस पूजा का उल्टा प्रभाव हुआ। अगस्त्यजी ने जब शंकरजी के साथ दक्षकुमारी की भी पूजा की, तो दक्षकुमारी ने यह समझा कि ये मुझसे कम बुद्धिमान हैं, तभी तो पूजा कर रहे हैं। जब ये मुझसे कम बुद्धिमान हैं, तो मैं इनकी बात क्या सुनूँ ! शंकरजी सुन रहे हैं और वे कोई बात सोच रही हैं। यदि आपको भी न सुनाई दे रहा हो, तो यही समझना चाहिये कि आपमें भी कहीं-न-कहीं दक्षकुमार या दक्षकुमारी की वह वृत्ति होगी। तो उन्होंने बिना सुने देख लिया। इसलिये भक्तों के द्वारा यह जो सुनाया जाता है, यह जो व्याख्या की जाती है – भगवान श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में ही जिन महापुरुषों ने जो व्याख्या की है, उसे पढ़ने की अपेक्षा इसलिये है कि उसके माध्यम से पहले हम जाने।

जानें बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ।। ७/८९/७

सतीजी ने सुना नहीं और ईश्वर दिखाई भी पड़ा, तो रोता हुआ ईश्वर ही दिखाई पड़ा। शंकरजी सीधे श्रीराम के पास क्यों नहीं गये? अगस्त्यजी ने कथा सुनाते हुए कह दिया कि इस समय तो प्रभु दण्डकारण्य में ही हैं। शंकरजी जानते थे। सोचा – कथा तो सुन ली, परन्तु जिनकी कथा सुनी, उनका दर्शन भी करें या न करें? तर्क तो यही कहता है कि व्यक्ति ने जिनके बारे में सुना, उन्हें देखने की इच्छा उत्पन्न हो। किन्तु शंकरजी बोले – नहीं, मेरा वहाँ जाना जरा भी उचित न होगा; क्योंकि मैं जाऊँगा, तो प्रभु को प्रणाम भी करूँगा। और प्रभु को प्रणाम करूँगा, तो स्वभावत: जब सब लोग देखेंगे कि भगवान शंकर ने प्रणाम किया, तो हमारे प्रभु का नाटक ही बिगड़ जायेगा। वे तो गुप्त रूप से मनुष्य-शरीर में लीला कर रहे हैं, अत: न जाना ही ठीक होगा –

गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गये जान सब कोय ।।

शंकरजी तो नहीं गये, परन्तु प्रभु ही सामने आ गये। आये भी, तो रोती हुई दशा में सामने आये। जब शंकरजी ने प्रभु को रोते हुए देखा, तो क्या हुआ? बड़े आनन्दित हुए –

संभु समय तेहि रामहि देखा ।
उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ।। १/५०/१

किसी को रोते देखकर आनन्दित होना – बड़ी अटपटी-सी बात लगती है। परन्तु यहाँ शंकरजी के आनन्दित होने का क्या कारण है?

चाहे भगवान श्रीरामकृष्ण के सन्दर्भ में हो, या भगवान श्रीराम के, अवतार की जीनव-चर्या के लिये 'लीला' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'लीलामृत' कहते हैं। 'लीला' का क्या अर्थ है? नाट्य-मंच पर जो अभिनय किया जाता है, वह 'लीला' है। मान लीजिये आपका कोई मित्र अभिनेता हो, और वह नाट्य-मंच पर अभिनय कर रहा हो। उसको देखकर सारे दर्शक रो रहे हों। उस दृश्य को देखकर क्या आप मंच पर पहुँच जायेंगे और उसके आँसू पोछने की चेष्टा करेंगे। नहीं, उसका रोना देखकर तो आपको बड़ा आनन्द आयेगा। वाह मित्र, कितना बढ़िया रोये कि सबको रुलाकर रख दिया और तुम भीतर-ही-भीतर हँसते रहे। अभिनेता की विशेषता ही यही है, वह बाहर से जो प्रदर्शित करता है, भीतर से वह स्वयं वैसा नहीं होता –

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोई ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोई ।। ७/७२

भगवान शंकर ने जब प्रणाम किया, तो सतीजी की तो तर्क-वितर्क की बुद्धि थी। उन्होंने कहा – "महाराज, मेरी बुद्धि तो इसे स्वीकार नहीं करती।"

ऐसी बात नहीं कि बुद्धि अनुपयोगी है, ऐसी बात नहीं कि बुद्धि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। बुद्धि का प्रयोग करना चाहिये कि नहीं करना चाहिये? यदि कोई पूछे कि बुद्धिहीन होना अच्छा है या बुद्धिमान होना? तो मैं कहूँगा कि प्रश्न यह नहीं है कि क्या होना अच्छा है? पहले तो आप इस बात का निर्णय कर लीजिये कि आप क्या हैं? यह मत कहिये कि क्या अच्छा है, अच्छा जो होगा सो होगा, परन्तु हम तो जैसे है, वैसे ही रहेंगे न ! उसके बाद हमें यह निर्णय करना होगा कि हम जैसे हैं, उसका किस प्रकार सदुपयोग हो सकता है?

यदि हम कहें कि बुद्धि बिल्कुल ठीक नहीं है, व्यक्ति को विश्वासी होना चाहिये, तो बुद्धिमान व्यक्ति क्या हमारे कहने मात्र से मान लेगा? नहीं मानेगा; और यही उचित भी है। भगवान श्रीरामकृष्ण के यश की पताका फहराने वाले हमारे जो महानतम स्वामी विवेकानन्दजी हैं, उनके जीवन में तो आप इतना तर्क पायेंगे, इतना संशय पायेंगे कि पूछिये ही मत ! उसका क्या अर्थ है? यह भी साधना की एक पद्धति है – सती का पार्वती में रूपान्तरण। यदि हम बुद्धिप्रधान हैं, तो हमारी प्रगति बुद्धि के मार्ग से ही होगी।

कहा गया कि भगवान शंकर विश्वास और पार्वती श्रद्धा हैं, परन्तु पूर्वजन्म में वे सती थीं। सती अर्थात् बुद्धि। बुद्धि और विश्वास – सती हैं बुद्धि और भगवान शंकर हैं विश्वास। यदि बुद्धि है, तो उसके सामने प्रश्न उठेंगे, तर्क आयेंगे। भले ही लम्बे मार्ग से हो, परन्तु उस बुद्धि को श्रद्धा में परिणत होना पड़ेगा। कभी-कभी पूछा जाता है कि श्रद्धा और विश्वास में क्या अन्तर है? **मान करके जान लेना – विश्वास है और जान करके मान लेना – श्रद्धा है।**

जिस व्यक्ति को सहज भाव से हृदय में अनुभव हो रहा है, उसे किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है, उसने जो स्वीकार कर लिया, वह विश्वास है। परन्तु जिसने बुद्धि के द्वारा निर्णय किया कि बिना-समझे हम स्वीकार नहीं करेंगे, तो यह बुद्धि का मार्ग है। यह मार्ग है तो लम्बा, पर चिन्ता की कोई बात नहीं। यदि आप बुद्धिमान हैं, तो छोटे मार्ग के फेर में पड़िये ही मत, चलिये, कठिनाई के मार्ग पर चलिये, जो समस्या आये, उसे सहिये। सतीजी के जीवन में यही हुआ। सती ही पार्वती के रूप में पुन: जन्म लेती हैं और यही है – बुद्धि का श्रद्धा के रूप में परिवर्तित होना। जब बुद्धि श्रद्धा के रूप में परिवर्तित हो जाती है, तब वे स्वयं रामकथा सुनती हैं और तब भगवान राम के विषय में उनके अन्त:करण में कोई संशय नहीं रह जाता।

भगवान राम और शंकरजी में बड़ा सुन्दर संवाद हुआ। भगवान ने एक दिन शंकरजी से कहा – "चलिये, सती को बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, परन्तु अन्त में आपने उनका भ्रम दूर कर ही दिया।" यह सुनकर शंकरजी को गर्व नहीं हुआ कि उन्होंने भ्रम दूर कर दिया। वे हँसने लगे। बोले – उनका भ्रम तो मैंने बाद में दूर किया, परन्तु उसके पहले तो आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया। प्रभु ने पूछा – आपका भ्रम मैंने कैसे दूर कर दिया? शंकरजी बोले – "हाँ महाराज, मैं इस डर से आपके पास नहीं आ रहा था कि मैं आपको प्रणाम करूँगा, तो सारा संसार जान जायेगा कि आप भगवान हैं। पर जब मैंने आपको प्रणाम किया और उसे देखकर मेरी पत्नी ने ही आपको भगवान स्वीकार नहीं किया, तो मैं समझ गया कि कहाँ तो मैं डर रहा था कि संसार जान जायेगा, लेकिन मेरी अपनी पत्नी ही आपको ईश्वर नहीं मान सकी। प्रभो, आपका विनोद भी कैसा है? मेरी पत्नी सती और मेरे चेले रावण ने ही आपको मनुष्य माना, तो मैं किस बात का गर्व करूँ? आप जब 'लीला' करते हैं, तो कोई भी दावे के साथ नहीं कह सकता कि वह लीला को देखकर भ्रमित नहीं हो जायेगा? मेरा तो भ्रम दूर हो गया।"

सचमुच ही अवतारों की लीलाओं की विविध घटनाओं से व्यक्ति के सामने ये समस्याएँ आती हैं। यह जो अवतरण की भूमिका है, अवतरण का प्रसंग है, वह यह बताने के लिये है कि सर्वप्रथम हमें अपनी दृष्टि को बदलना होगा।

भगवान राम के अवतार में, भगवान कृष्ण के अवतार में, भगवान श्रीरामकृष्ण के अवतार में तथा अन्य अवतारों में भी आपको सभी पक्ष मिलेंगे। पर प्रत्येक अवतार में किसी-न-किसी पक्ष की प्रबलता होती है। भगवान राम का जो रामराज्य है, वह मानो सृष्टि का परिवर्तन है। परन्तु भगवान कृष्ण के काल में 'रामराज्य' जैसा कोई 'कृष्ण-राज्य' नहीं बना। यदि 'कृष्ण-राज्य' नहीं बना, तो इस प्रसंग में दो सूत्र विचारणीय हैं। पहला सूत्र तो यह है कि प्रयत्न तो हमें यही करना चाहिये कि सृष्टि बदले, समाज बदले, व्यक्ति बदले; परन्तु यह सर्वदा सम्भव नहीं होता कि प्रयत्न करने पर ऐसा परिवर्तन हो ही जाय। भगवान राम के 'रामराज्य' का अर्थ है – सृष्टि का परिवर्तन। और भगवान कृष्ण के रूप में, गीता का उपदेश का अभिप्राय है कि सृष्टि यदि न भी बदले, तो अपनी दृष्टि तो बदल लो। अब आप चाहे सृष्टि बदलिये या दृष्टि बदलिये, अथवा दोनों को बदलिये। तत्त्व यही है – दृष्टि और सृष्टि का परिवर्तन। इस परिवर्तन की जो प्रक्रिया है, इसमें कभी तो सृष्टि में परिवर्तन की अपेक्षा है और कभी अपनी ही दृष्टि को बदलने की आवश्यकता है। भगवान श्रीरामकृष्ण तथा विवेकानन्दजी के सन्दर्भ में जब आप पढ़ेंगे, तो कभी-कभी आपको विरोधाभास लगेगा।

वह विरोधाभास क्या है? एक ओर तो यदि आप यह मान लें कि यह संसार तो जैसा है वैसा ही रहेगा, बदल नहीं सकता, तो इससे निष्क्रियता आती है; और यदि आप मान लें कि हम सबको बदल देंगे, तो अभिमान आ जाता है। इसलिये उस एक सूत्र – एक संकेत को समझ लेना होगा कि कैसे परिवर्तन करते हुए भी परिवर्तन के लिये चेष्टा करने के बाद सृष्टि में परिवर्तन भले ही चाहे जितना भी हो, या न हो, परन्तु दृष्टि में पूरी तौर से परिवर्तन आ जाना चाहिये।

अभी दूरदर्शन पर महाभारत दिखाया जा रहा था। लोग बड़े आकर्षण के साथ उसे देखते थे। एक दिन एक बड़ी विलक्षण पत्रकार-वार्ता हुई। किसी पत्रकार ने दुर्योधन का अभिनय करनेवाले अभिनेता से साक्षात्कार लिया और पूछा कि उन्होंने दुर्योधन का जो अभिनय किया है, उससे क्या उन्हें पूरा सन्तोष है? उन्होंने कहा – पूरा सन्तोष है। यहाँ तक तो कोई बात नहीं थी। फिर उसने पूछा – अच्छा, तो आपकी दृष्टि में महाभारत का सर्वश्रेष्ठ पात्र कौन है? वह बोला – दुर्योधन। बात और भी आगे बढ़ी। पत्रकार ने पूछा – आपकी दृष्टि में सबसे बुरा पात्र कौन है? वह बोला – कृष्ण।

पढ़कर मुझे लगा कि वह व्यक्ति अभिनय में ही नहीं, वास्तविक जीवन में भी दुर्योधन बन गया है। तो दुर्योधन की समस्या यही थी। उसने भगवान कृष्ण को तो देखा ही नहीं। जब वह भगवान कृष्ण को बन्दी बनाने चला, तो भगवान ने अपना विराट् रूप प्रगट कर दिया। दुर्योधन भयभीत हो गया और श्रीकृष्ण सभा से चले गये। उस विराट् रूप को देखकर वह पसीने से तर-बतर हो गया, परन्तु उसके बाद ही उसने कर्ण से कहा – देखो, भाई, यह कैसा इन्द्रजाली जादूगर है, बड़े चक्कर में डाल दिया। कुछ भी कहो, इसमें भले ही और कोई योग्यता हो या न हो, लेकिन जादूगर तो बढ़िया है। दूसरी ओर भगवान जब अर्जुन को अपना वही रूप दिखाने लगे, तो उसके साथ-साथ उन्होंने कह दिया (गीता, ११/८) – मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, तुम मुझे देखो।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।

दिव्य दृष्टि क्यों दे दी? उन्हें याद आ गया कि दुर्योधन को भी दिखलाया था, पर उसे दृष्टि नहीं दी थी, इसलिये उसने मुझे जादूगर समझ लिया था। दृष्टि नहीं होगी, तो तुम जिस सृष्टि को देख रहे हो, उसे भी गलत देखोगे। व्यक्ति सृष्टि को जैसा देख रहा है, वह सही नहीं है और ईश्वर कहते हैं कि तुम मुझे सही रूप में देखो।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया में, हमारा प्रथम कर्तव्य यह है कि सबसे पहले हम अपने विचारों में, मान्यताओं में, दृष्टिकोणों में परिवर्तन लायें। दृष्टि में इस परिवर्तन के पश्चात् ही सन्त चरनदासजी ने कहा – गुरुजी ने मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की। – क्या कृपा की? बोले – गुरु ने ऐसी कृपा की कि मेरी आँखों की पुतलियाँ उलट गईं –

चरन दास प्रभु किरपा कीन्ही
उलटि गई मोरि नैन पुतरियाँ ।

पुतली उलट जाने का अर्थ यह है कि देखने की जो दृष्टि थी, वह पूरी तरह से परिवर्तित हो गई। हनुमानजी के चरित्र में भी साधना के पक्ष का वही संकेत विद्यमान है। प्रश्न उठता है कि सृष्टि जड़ का विकास है या फिर चैतन्य का विलास? भगवान की भक्ति से जब बुद्धि शुद्ध हो जाती है, तब यह सृष्टि चैतन्य का विलास दिखने लगती है। और जब तक भक्ति से बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है, तब तक यह सृष्टि जड़ का विकास ही प्रतीत होगी –

रघुपति भगति बारि छालित
चित बिनु प्रयास ही सूझै ।। वि.प., १२४/५

हनुमानजी और रावण की दृष्टि में यही अन्तर है। कहा जाता है कि रावण ने जल, अग्नि, वायु आदि प्रकृति के सारे तत्त्वों पर अधिकार कर लिया था। विज्ञान की भी यही दृष्टि है कि उन पर अधिकार कर लिया है। प्रकाश तथा वायु के रूप में अधिकार किया हुआ दिखाई दे रहा है। साधारणतः विज्ञान की दृष्टि यह है कि पदार्थ में शक्ति छिपी हुई है और यदि हम पदार्थ से शक्ति को प्रगट कर सकें, तो उसके द्वारा असंख्य महान् कार्य हो सकते हैं और विज्ञान ने यह चमत्कार करके दिखा भी दिया है। ये जो पदार्थ हैं, उसी से शक्ति के विविध रूप प्रगट हो रहे हैं – चाहे वे परमाणु के रूप में हों या विद्युत् के रूप में। इसमें जड़ के द्वारा ही तो शक्ति प्रगट की गई। विज्ञान और अध्यात्म में भेद मात्र इतना ही है कि **भौतिक विज्ञान कहता है – पदार्थ में शक्ति को खोजो और अध्यात्म विज्ञान कहता है – शक्ति को खोजो पर साथ ही उसके पीछे स्थित शक्तिमान को भी खोजो ।**

शक्ति है और उसके पीछे शक्तिमान है। सीताजी जब पृथ्वी से जन्म लेती हैं, पार्वतीजी जब पर्वत से जन्म लेती हैं, लक्ष्मीजी जब समुद्र से जन्म लेती हैं, तो इसका तात्पर्य यही है कि यह सब जो जड़ दिखाई दे रहा है, इसके पीछे चैतन्य विद्यमान है। इसीलिये यह अन्तर दिखाई देता है। रावण यह मान बैठा है कि वह जाननेवाला है, कहता हैं – मैंने सारी प्रकृति पर अधिकार कर लिया है। विज्ञान में भी व्यक्ति को यह भ्रम हो सकता है, परन्तु हनुमानजी की यात्रा में आपको एक क्रम मिलेगा। रावण जिन-जिन वस्तुओं को जड़ मानकर उन पर अपना अधिकार मानता है, हनुमानजी ने उन्हीं-उन्हीं वस्तुओं के माध्यम से उसके भ्रम को दूर करने की चेष्टा की। हनुमानजी जब लंका की ओर चले, तो समुद्र ने मैनाक पर्वत से कहा – तुम हनुमानजी को विश्राम दो –

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी ।
तैं मैनाक होहि श्रमहारी ।। ५/१/९

इसी में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग – सभी योगों की व्याख्या है। समुद्र मैनाक से कहता है कि तुम हनुमानजी को विश्राम दो। एक ओर तो समुद्र जड़ है, यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है, परन्तु हनुमानजी के लिये वह जड़ जैसा व्यवहार नहीं करता। जड़ जैसा व्यवहार तो बल्कि उसने बाद में भगवान से किया। हनुमानजी जा रहे थे तो मैनाक पर्वत से कहा – ये जा रहे हैं, जरा इन्हें विश्राम तो दो। कहते हैं कि मैनाक पर्वत सोने का था, वह हनुमानजी को विश्राम देने के लिये आया। परन्तु हनुमानजी ने केवल उसका स्पर्श कर दिया और आगे बढ़े, विश्राम नहीं किया। बाद में किसी ने हनुमानजी से पूछा – महाराज, मैनाक तो आपके पिता का मित्र था, आपने विश्राम क्यों नहीं किया? तो इस पर वे बोले – "मैंने सोचा कि सोने के मृग के कारण ही तो किशोरीजी प्रभु से दूर हो गईं। जब सोने का एक मृग ही इतनी दूरी उत्पन्न कर सकता है, तो फिर यहाँ तो सोने का पहाड़ ही है। इसको तो मेरा दूर से ही प्रणाम है।" यह कांचन का प्रलोभन था। कामिनी-कांचन के प्रलोभन का संकेत भगवान श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के सन्दर्भ में बार-बार उनके ग्रन्थों में आपको मिलेगा। इसका संकेत यह है कि हनुमानजी के हृदय में इतने बड़े स्वर्ण पर्वत का भी प्रलोभन नहीं है। लंका में असंख्य सुन्दरियाँ हैं। हनुमानजी श्रीसीताजी की खोज में सारे भवनों में गये, पर लंका कि सुन्दरियों के प्रति उनके मन में कोई प्रलोभन नहीं है, वे उससे मुक्त हैं।

समुद्र और प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ उनके साथ चेतन जैसा व्यवहार करता है। रावण कहता है – बन्दर की पूँछ में आग लगा दो। अग्नि जड़ है। कहीं भी आग लगा दीजिये, तो वह जला देगी। पर उस अग्नि ने हनुमानजी की पूँछ को नहीं जलाया। फिर जब लंका जलने लगी, तो हनुमानजी बताना चाहते थे कि यह भ्रम मत पालो कि यह जड़ है और यह तुम्हारी आज्ञा से चलती है; इस जड़ के पीछे परम चैतन्य – हमारे साक्षात् प्रभु हैं। और वे चाहते हैं कि पूछ नहीं, बल्कि लंका जल जाय। फिर जिस वायु पर रावण अपना अधिकार समझता था, लंका-दहन के समय प्रभु की प्रेरणा से वे उनचासों पवन चलने लगे –

हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।। ५/२५

इस प्रकार रावण को दिखाई देने लगा कि वायु भी मेरे अधिकार में नहीं है। तब उसने बादलों से कहा – चलो, वर्षा करो और आग बुझा दो। बादल वर्षा करने लगे, तो आग और भी प्रबल हो गई। अब क्या किया जाय! परन्तु वह तो अहंकारियों का सिरमौर ही था। माल्यवान ने कहा – आपने ईश्वर का चमत्कार देखा? पर उसका अभिमान इतना प्रबल था कि वह बोला – कौन है ईश्वर! अभिमानी लोग किसी बात को सरलता से नहीं मान लेते।

आस्तिक और नास्तिक में विवाद छिड़ा। आस्तिक ने कहा – हम छत से कूदें और चोट न आवें, तब तो मान लोगे न कि ईश्वर की सत्ता है। वह भगवान का नाम लेकर कूद पड़ा, उसे चोट नहीं आई। आस्तिक बोला – अब तो मानते हो न? नास्तिक ने कहा – यह संयोग है। आस्तिक बोला – ठीक है, हम फिर कूदते हैं। कूदा, फिर चोट नहीं आई। आस्तिक – अब तो मान लिया? नास्तिक – यह तो तुम्हारा भाग्य था। आस्तिक – ठीक है। फिर तीसरी बार भी भगवान का नाम लेकर कूदा। फिर चोट नहीं आई। आस्तिक – अब बोलो? नास्तिक – तुम्हारा अभ्यास अच्छा है।

तर्क की ऐसी ही स्थिति है। इसीलिये रावण किसी की बात स्वीकार नहीं कर पाता। यही उसका अविवेक है और यही उसके विनाश का कारण बनता है। हनुमानजी उसे बताना चाहते थे कि सीताजी सारी प्रकृति की महाशक्ति हैं और यह संसार उन्हीं महाशक्ति का विलास है। रावण ने उनसे पूछा – तुमने किसके बल से वाटिका को उजाड़ दिया? हनुमानजी बोले – अरे, जिनके बल से तुमने सारे संसार को जीत लिया, उन्हीं के बल से मैंने वाटिका उजाड़ दी। उसने पूछा – तो फिर तुममें और हममें अन्तर क्या है। बोले – हम दोनों में भेद यह है कि तुमने उनके बल का दुरुपयोग करके उन्हीं की शक्ति को चुराने की चेष्टा की और मैं उन्हीं की शक्ति का पता लगाने आया हूँ, बस, और कोई भेद नहीं है। मूर्ति के रूप में आराधना का अभिप्राय यह है कि मूर्ति जड़ नहीं है, पत्थर नहीं है, यह साक्षात् चैतन्य है। इसीलिये मूर्तिपूजा की समग्र सार्थकता तो तब दीख पड़ी, जब सीताजी पार्वतीजी की स्तुति करती हैं और उत्तर में पार्वतीजी उन्हें चैतन्य के रूप में आशीर्वाद देती हैं। फिर जब भगवान राम के द्वारा पूजा होती है, तो भी वही स्थिति। भगवान श्रीरामकृष्ण के द्वारा माँ काली की पूजा की जाती है, तब माँ उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं, उनसे वार्तालाप करती हैं। तात्पर्य यह कि वे सचमुच चैतन्य हैं, हम जिसे जड़ समझ बैठे हैं, वहाँ भी चैतन्य-शक्ति ही विलास कर रही हैं। जब गोवर्धन पर्वत को भोग लगाया गया, तो वह सारा भोग ग्रहण करने लगा। भगवान स्वयं ही गोवर्धन पर्वत के रूप में सारी सामग्री ग्रहण करने लगे। इस प्रकार भगवान विविध युगों में विविध रूपों में अवतार लेते हैं और अपनी लीला और चरित्र के द्वारा उन्हीं सत्यों को प्रगट करते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन में जो लीला पक्ष है, उसके माध्यम से भी रामायण का दर्शन ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। भगवान श्रीरामकृष्ण की साधना के रूप में, उनकी वाणी में माँ काली के प्रति उनकी जो मातृ-भावना दिखाई देती है; और हनुमानजी माँ को जिस मातृभाषा में पुकारते हैं; इन सबमें जो सामंजस्य है, आगे उसी ओर संकेत किया जायेगा। ❖ **(क्रमशः)** ❖

भागवत की कथाएँ (१८)

स्वामी अमलानन्द

(श्रीमद् भागवतम् पुराणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसकी कथाओं ने युग-युग से मनुष्य को धर्म के प्रति आस्था-विश्वास दिया है जिससे भारतवासियों ने दृढ़ आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। उन्हीं कथाओं में से लेखक ने कुछ का चयन करके सरल भाषा तथा संक्षेप में पुनर्लेखन किया है। 'विवेक-ज्योति' के लिये इस ग्रन्थ का सुललित अनुवाद किया है छपरा के डॉ. केदारनाथ लाभ, डी. लिट्. ने। – सं.)

भृगु के चरण-चिह्न

(श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि वर्णमाला के सभी वर्णों में 'स'-वर्ण ही एक ऐसा है, जिसके तीन रूप हैं – श, ष, स। अर्थात् सहन करो, सहन करो, सहन करो। जो सहता है, वह रहता है। जिसकी सहनशक्ति अधिक होती है, वही सबसे महान् होता है।)

सरस्वती नदी के तट पर एक विराट् यज्ञ का आयोजन हुआ। दूर-दूरान्त से ऋषि-मुनिगण एकत्र हुए। उनमें चर्चा उठी कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर – इन तीन देवताओं में सबसे बड़ा कौन है। इसके विषय में निर्णय का भार ब्रह्मा के पुत्र भृगुमुनि को दिया गया। इसके अनुसार सबसे पहले वे अपने पिता (ब्रह्मा) के पास गए, परन्तु उन्होंने न तो अपने पिता को प्रणाम किया और न उनके प्रति किसी तरह का सम्मान ही प्रदर्शित किया। इससे ब्रह्माजी क्रोधित हो गए। परन्तु जब उन्होंने देखा कि यह तो मेरा पुत्र ही है, तो उन्हें क्षमा कर दिया। तथापि, ब्रह्माजी क्रुद्ध हुए हैं, इसका लक्षण उनमें भलीभाँति दीख पड़ा था।

भृगु अब कैलास की ओर चले। भगवान शंकर आनन्दपूर्वक उनका आलिंगन करने आगे आए। परन्तु भृगु मुनि पीछे हट गये और शिव को गालियाँ देने लगे। शिव परिपाटी से नहीं चलते, श्मशान में रहते हैं, भूत-प्रेत को साथ लेकर घूमते-फिरते हैं, इसलिए भृगु ने उनको स्पर्श करने से रोका। इस पर क्रुद्ध होकर महादेव उन्हें त्रिशूल लेकर मारने चले। परन्तु देवी पार्वती के अनुरोध करने पर शिव शान्त हुए।

इसके बाद भृगु-मुनि वैकुण्ठ गए। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान विष्णु लक्ष्मीजी के साथ पलंग पर बैठे हैं। भृगु ने पास जाकर सहसा विष्णु के वक्षस्थल पर जोर की एक लात जमा दी। इससे श्रीहरि के मनोभाव में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उन्होंने बिस्तर से उठकर मधुर वाणी से मुनि का स्वागत किया। बोले – "मुनिवर ! रास्ते में आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आप आये हैं, हमें इसकी सूचना नहीं मिल सकी, इसके लिए हमें क्षमा कीजिए। आपका पदाघात मेरे वक्षस्थल पर स्थायी चिह्न बनकर रहेगा।"

भृगु मुनि की परीक्षा का कार्य समाप्त हुआ। वे विष्णु की मधुर वाणी तथा व्यवहार से परम सन्तुष्ट हुए। वे भक्ति-भाव से गद्गद् होकर चुपचाप आँखों से आँसू बहाने लगे। यज्ञ-भूमि में लौटकर उन्होंने ऋषियों को अपना निर्णय सुनाया – विष्णु ही तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। मुनिगण यह सुनकर सारे सन्देहों से मुक्त हुए।

जो साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, जो ज्ञान, वैराग्य, अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के आधार हैं, सत्त्व जिनकी प्रिय मूर्ति[१] है, शान्त चित्तवाले विवेकीगण जिनकी सेवा करते रहते हैं, वे विष्णु ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीनों में श्रेष्ठ हैं। शुकदेव द्वारा वर्णित इस कथा को सुनकर परीक्षित परम आनन्दित हुए।

द्वारका और यदुवंश

कृष्ण-लीला की बातें अब समाप्ति की ओर बढ़ रही हैं।

शुकदेव राजा परीक्षित को द्वारका की समृद्धि की कथा सुना रहे थे। द्वारकापुरी समस्त प्रकार के धन-रत्नों से परिपूर्ण थी। स्वस्थ-सबल नर-नारी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं की शोभा बढ़ा रहे थे। राजमार्ग सुसज्जित घोड़े, हाथी और रथ से भरे रहते थे। पुष्प-वाटिकाएँ विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सुशोभित थीं।

श्रीकृष्ण को अनेक पत्नियाँ थीं। उनमें रुक्मिणी आदि आठ रानियाँ प्रमुख थीं। उनमें से प्रत्येक के दस-दस पुत्र थे। पुत्रों में – प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध – ये अठारह प्रमुख थे। रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वगुणों से सम्पन्न थे। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध थे। यदुवंश के नाश होने के बाद एकमात्र अनिरुद्ध के पुत्र वज्र ही अकेले बचे थे। श्रीकृष्ण के अनुगामी होकर इन सबने परम सौभाग्य प्राप्त किया था।

देवकी के गर्भ से जिनका जन्म-ग्रहण करना महज कहने

१. सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिः ब्राह्मणास्त्विष्ट-देवताः।
भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुण-बुद्धयः॥ १०/८९/१८

भर की बात है, जो चर-अचर सभी का दु:ख मिटानेवाले हैं, यदुवंशीगण जिनके एकनिष्ठ सेवक हैं, जिन्होंने स्वयं तथा अर्जुन आदि के द्वारा हुए सारे अधर्मों का नाश कर दिया है, जो अपने सुमधुर मन्द-मन्द हासयुक्त श्रीमुख के लिए गोपियों के प्रियतम हैं, जो जनगण के एकमात्र आश्रय हैं, उन श्रीकृष्ण की जय हो।[२]

एकादश स्कन्ध

ऋषियों का शाप – मूसल और उसका परिणाम

समय अपनी गति से चलता जाता है।

यदुवंश के ऐश्वर्य तथा उन्नति के साथ ही उत्पात भी शुरू हो गये थे। यदुकुल के वंशज उच्छृंखल और हठी हो गये थे। श्रीकृष्ण उन्हीं लोगों के वंश में जन्मे थे, इस कारण वे लोग अहंकार से धरती पर पाँव नहीं रखते थे। गुरुजनों का अनादर करना और सम्माननीयों का अपमान करना अब उन लोगों के नित्य-कर्म हो गये थे।

विश्वामित्र, दुर्वासा, नारद आदि मुनिगण एक दिन श्रीकृष्ण का दर्शन करने द्वारका आये थे। जब वे लोग लौटने लगे, तब यदुकुल के कुमारों ने उनकी हँसी उड़ाने की एक युक्ति निकाली। वे लोग जाम्बवती के पुत्र साम्ब को नारी के वेश में सजाकर मुनियों के पास ले आकर परम भले आदमियों की भाँति कहने लगे – "यह स्त्री गर्भवती है। आप लोग भविष्यद्रष्टा ऋषि हैं; बताइए तो, यह कन्या जनेंगी या पुत्र?"

मुनियों ने इससे अपने को अपमानित महसूस किया। उन्होंने नाराज होकर कहा – यह लोहे का एक मूसल जनेगी और उसी मूसल से तुम लोगों के यदुकुल का विनाश होगा – **मुसलं कुलनाशनम्**।[३] साम्ब के पेट को कपड़ों से लपेट कर ढँका गया था। कपड़ों को खोलने पर उसमें से सचमुच ही लोहे का एक टुकड़ा (मूसल) निकला। लड़के भयभीत हो गये। वे लोग दौड़कर राजा उग्रसेन के पास गये और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। द्वारकावासी वह मूसल देखकर आतंकित हो गये। राजा के आदेश पर उसे कूटकर चूर्ण बना दिया गया। अन्त में केवल एक छोटा-सा टुकड़ा ही बच गया। उन सब को समुद्र में फेंकने के बाद यदुकुल के लोग निश्चिन्त हो गये। परन्तु लोहे का वह चूर्ण तट से आ लगा और उससे एरक नाम की एक तरह के घास की उत्पत्ति हुई। उस लोहे के टुकड़े को भी एक मछली निगल गयी। मछली के पेट से वह लौहखण्ड मछुवारों को मिला और उन लोगों ने उसे ले जाकर जरा नामक एक व्याध को दे दिया। व्याध ने उससे एक तीक्ष्ण धार का तीर बनवाया।

श्रीकृष्ण को सारी बातें ज्ञात हुईं। वे चाहते तो ब्रह्मशाप को पलट भी सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा।

❖ (क्रमश:) ❖

---

२. जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवर-पर्षत्-स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिरचर-वृजिनघ्नः सुस्मित-श्रीमुखेन
व्रजपुर-वनितानां वर्धयन् कामदेवम्॥ १०/९०/४८

३. एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप।
जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम्॥ ११/१/१६

विनम्रता का गुण

स्वयं को ज्यादा चतुर समझना उचित नहीं। कौआ खुद को कितना चालाक समझता है ! वह कभी फन्दे में नहीं फँसता। भय की तनिक आशंका होते ही उड़ जाता है। कितनी चतुराई के साथ वह खाने की चीजें उड़ा ले जाता है ! पर इतना होते हुए भी वह विष्ठा खाकर मरता है। ज्यादा चालाकी का यही फल होता है।

ऊँचे उठना हो (महान् बनना हो), तो पहले नीचा (विनम्र) बनना चाहिए। चातक पक्षी का घोंसला नीचे होता है, पर वह आसमान में बहुत ऊँचे उड़ता है। ऊँची जमीन में खेती नहीं होती, उसके लिए नीची जमीन चाहिए, जहाँ पानी जम सके। तभी खेती हो सकती है।

जहाँ अन्य लोग सिर झुकाते हैं, वहाँ पर तुम्हें भी दण्डवत् करना चाहिए।

फलवान वृक्ष की डालियाँ सदा नीचे झुकी होती हैं। यदि तुम बड़े बनना चाहते हो तो छोटे (नम्र) बनो।

तराजू का जो पलड़ा भारी होता है, वह नीचे आ जाता है और जो हलका होता है, वह ऊपर उठ जाता है। इसी तरह जो व्यक्ति गुणी और सामर्थ्यवान होता है, वह सदा नम्र और विनयशील होता है, मूर्ख ही झूठे अहंकार-अभिमान से फूला रहता है।

– *श्रीरामकृष्ण*

आत्माराम के संस्मरण (८)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से उन्हें संन्यास-दीक्षा मिली थी। उन्होंने बँगला में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ प्रेरक तथा रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। अब तक हम उनके तीन ग्रन्थों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी' एवं 'आत्माराम की आत्मकथा' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। १९६५-६६ के दौरान उन्होंने एक बार पुन: अपने जीवन के कुछ संस्मरणों को बँगला भाषा में लिखा था। उनमें से कुछ घटनाएँ प्रकाशित हुई हैं और कुछ नयी – अप्रकाशित हैं। पूर्व-प्रकाशित घटनाएँ भी भिन्न विवरणों के साथ भिन्न रूप में लिखी गयी हैं, अत: पुनरुक्त होने पर भी रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायी हैं। अनुवादक तथा सम्पादक हैं – स्वामी विदेहात्मानन्द। – सं.)

पण्ढरपुर में और उसके आगे

महाराष्ट्र के ग्राम, जंगल, पहाड़ आदि देखते हुए संन्यासी पण्ढरपुर जा पहुँचा। पण्ढरपुर वर्तमान महाराष्ट्रीय लोगों के लिये काशी के समान पवित्र तीर्थ है। संन्यासी ने नदी के किनारे एक शिव-मन्दिर में आश्रय लिया। मन्दिर छोटा-सा था। वर्षा का मौसम था, अत: नदी दोनों तटों को छूती हुई बह रही थी। छल-छल करती जलराशि – सुन्दर दृश्य था।

एक ब्राह्मण ने आकर भिक्षा का निमंत्रण दिया। पाण्डुरंग के मन्दिर के पास ही सीधे रास्ते पर उनका घर था, इसलिये उनके यहाँ अनेक साधु तथा ब्राह्मण आया करते थे। मन्दिर में दर्शन के बाद संन्यासी उनका घर खोजने लगा और वह सहज ही मिल गया। मन्दिर की व्यवस्था खास अच्छी नहीं लगी, अत: संन्यासी को विशेष आनन्द नहीं मिला।

भोजन के बाद वह उसी शिव-मन्दिर में बैठकर महाराष्ट्र के भक्तों के बारे में सोचने लगा। शहर में जाने की उसकी इच्छा नहीं हुई। अगले दिन एकादशी थी। उस दिन तीर्थस्थान के अधिकांश लोग उपवास या फलाहार करते हैं। संन्यासी को इस विषय में विशेष रुचि नहीं थी। वे ब्राह्मण ही पुन: आकर फलाहार का निमंत्रण दे गये। दो छोटे फल, एक टुकड़ा नारियल और सम्भवत: कुछ उबली हुई मूलियाँ थीं। उसी से किसी प्रकार उस दिन की क्षुधा-निवृत्ति हुई।

लौटकर फिर शिव-मन्दिर में बैठा था, तभी देखा कि एक नाव उस पार जा रही है। नौकावाले ने पूछा – "बाबाजी, उस पार जाओगे क्या?" संन्यासी तत्काल राजी होकर नाव में बैठ गया। उस पार उतरने के बाद एक चौड़ा रास्ता देखकर पूछने से पता चला कि वह सीधे शोलापुर जाता है। दूरी ६४-६५ मील होगी।

शोलापुर के पथ पर

थोड़ी देर चलने के बाद देखा कि रास्ता पानी में डूब गया है और उसकी जगह एक विशाल सरोवर लहरा रहा है। अब क्या किया जाय? पास में तो कोई गाँव नहीं था, लेकिन पानी के उस पार एक गाँव दिख रहा था।

पानी के किनारे-किनारे खेत के बीच से थोड़े ऊँचे जमीन की ओर यह देखने चला कि शायद कहीं उधर से उस पार जाने की सुविधा हो। जलराशि समाप्त होने को आयी, पानी से भरा हुआ नाला काफी चौड़ा था। देखा कि नाले के उस पार बबूल का घना जंगल है और दो मुसलमान भाई (गड़ेरिये) वहीं भेंड़-बकरियाँ चरा रहे हैं।

पूछने पर बोले – "सीने तक पानी है, पार हो सकेंगे।" परन्तु संन्यासी के लिये वह गले तक हुआ। सब कुछ भीग गया। पुस्तक और एक वस्त्र हाथ में पकड़कर ऊँचा रखने के कारण सूखा रह गया, भीगने से बच गया।

– "आप इधर किस प्रकार आये, इधर तो भयंकर बबूल का जंगल है और आपके पाँव में तो जूते भी नहीं दिखते। आपको जाना कहाँ है?"

वहाँ बबूल का कण्टकाकीर्ण जंगल, रास्ता नहीं था, मात्र पगडण्डी थी। दोनों मुसलमान गड़ेरियों के पाँवों में काँटों पर चलने के लिये खूब ऊँचे तल्ले के मोटे जूते थे।

संन्यासी बोला – "इच्छा तो शोलापुर जाने की है, परन्तु पास में कोई गाँव है क्या? सड़क के ऊपर बहुत-सा पानी भर जाने के कारण इधर आने को बाध्य हुआ हूँ।"

– "एक मील दूर गाँव है, लेकिन आप जायेंगे कैसे? आपके पाँवों में तो जूते ही नहीं हैं!"

इसके बाद दोनों ने आपस में बातें की। नाले के पास एक खजूर का पेड़ था। उसमें से एक पत्ता काटकर झाड़ू जैसे पकड़कर बोला – "अब इसी पगडण्डी से होकर आइये। इधर-उधर पाँव रखते ही मुश्किल में पड़ जायेंगे।" और झाड़ू से काँटे हटाते हुए संन्यासी को जंगल के किनारे तक पहुँचाकर बोले – "इसी पगडण्डी को पकड़कर सीधे चले जाइये। उस टीले के पास गाँव है। देखिये, इधर गोखरू के काँटे बहुत हैं, इस रास्ते के बाहर पाँव मत रखियेगा।" इतना कहकर सलाम करने के बाद वह भाई जाने लगा। संन्यासी ने उसे इस अनुग्रह के लिये धन्यवाद देने पर बोला – "यह तो मेरा फर्ज था। मैंने ज्यादा किया ही क्या है?" इस छोटी-सी उक्ति में 'मानवता' निहित थी!

संन्यासी धीरे-धीरे चलता हुआ गाँव के पास पहुँचा। एक छोटा १३-१४ साल के मुसलमान बालक से भेंट हुई। उस

बालक ने भी सलाम आदाब करके पूछा – "आप इस रास्ते से किस प्रकार आये? उधर तो बबूल का भीषण जंगल है। शोलापुर जाने का मार्ग तो गाँव के उस ओर है।"

संन्यासी के सब बताने पर वह बोला – "तब तो आज सारे दिन आपका खाना नहीं हुआ!"

उसके हाथ में रूमाल से ढँकी हुई थाली थी, उसे दिखाते हुए बोला – "ख्वाजा साहब पीर को यह अन्न चढ़ाने ले गया था, परन्तु आप तो हिन्दू संन्यासी हैं, यह तो आपको नहीं चलेगा, लेकिन दूध-फल तो खा सकेंगे न?"

संन्यासी के हामी भरने पर वह बोला – "ठीक है, तब तो मेरी बकरी है, दूध दे देगी और घर में अच्छे पके फल भी हैं। आप वही खा लीजियेगा। अच्छा, तो ठहरेंगे कहाँ?"

संन्यासी के "जहाँ भी जगह मिले" – कहने पर बोला – "तो फिर मस्जिद में ही रहियेगा। मेरे दादाजी मुल्ला हैं, मैं जाकर उनसे कहूँगा। खूब मजा रहेगा। खूब बातचीत होगी।"

उसके साथ गाँव में पहुँचकर संन्यासी उसके निर्देशानुसार मस्जिद के बाहरी बरामदे में बैठा। वह जाकर अपने दादाजी को बुला लाया। मुल्लाजी ने आकर स्वागत करते हुए कहा – "महाराज, यह गाँव मराठा लोगों का है। हम मुसलमान केवल ४-५ घर मात्र हैं। आप तो संन्यासी हैं, औलिया हैं। आपके लिये मुसलमान और हिन्दू – सब समान हैं, पर जब मराठा लोगों को मालूम होगा कि हिन्दू संन्यासी को मस्जिद में स्थान दिया गया था, तो वे नाराज होंगे और झगड़ा भी कर सकते हैं। अत: एक काम कीजिये, पहले उन लोगों के 'काले-हनुमान-मण्डप'* में जाइये। यह लड़का आपका है। आगे जाकर ग्राम-प्रधान को बुला लायेगा। यदि वे आपके ठहरने की कोई व्यवस्था न करें, तो यह मस्जिद तो है ही।" इन बातों में गाँव की राजनीति थी और व्यावहारिकता भी।

'काले हनुमान का मण्डप' गाँव की अतिथिशाला थी और गन्दगी से परिपूर्ण थी। उसमें बकरे, गधे आदि मौज से घूमते और मल-मूत्र त्यागकर सारा जगह भर देते। उसे स्वच्छ रखने की ओर किसी का भी ध्यान न था।

लड़के ने झाड़ू उठाकर सब साफ किया, कचरे को दूर फेंका और थोड़ा पानी छिड़कने के बाद संन्यासी का कम्बल बिछा दिया। सामने ही कुँआ था। संन्यासी ने पानी निकाला और हाथ-मुँह धोकर बैठ गया। लड़का गाँव के मुखिया को बुला लाया। साथ में और भी दो-तीन लोग थे। वैसे संन्यासी मराठी समझ सकता है, परन्तु बोलने का अभ्यास नहीं था। अत: लड़का दुभाषिये का काम करने लगा। संन्यासी प्रधान के प्रश्नों का उत्तर हिन्दी में दे रहा था और बालक उसका मराठी अनुवाद करके उन्हें समझा रहा था। इस प्रकार काफी देर तक बातें चलीं। बड़ा मजा आया। मराठा लोगों की मानसिक अवस्था का आकलन करने का यह एक अच्छा सुयोग था। (ये ही लोग शिवाजी की सेना के सिपाही थे।) परन्तु उसकी चर्चा का यह स्थान नहीं है, यहाँ केवल इतना ही उल्लेख करना आवश्यक है कि उन मराठा भाइयों को – उनमें भी विशेषकर प्रधान को, संन्यासी के लिये भिक्षा की व्यवस्था के विषय में निर्णय करने में काफी समय लगा।

प्रधान – "यह तो संन्यासी है, इसकी भिक्षा की व्यवस्था इस समय, इतनी रात को!" (तब संध्या हो रही थी।)

पहला व्यक्ति – "यही तो समस्या है!"

दूसरा व्यक्ति – "निश्चय ही, यह संन्यासी है न!"

थोड़ी देर तक इसी तरह की बातें चलती रहीं। उसके बाद वह मुसलमान लड़का बोला – "आप लोग जल्दी निर्णय लीजिये। इनका सारे दिन खाना नहीं हुआ है।"

प्रधान – "अरे बाबा, वह तो समझा, लेकिन ये संन्यासी हैं। इनके लिये हम क्या कर सकते हैं!"

पहला व्यक्ति – "हाँ, यही तो बात है! वह मुसलमान है, वह क्या समझे?"

दूसरा व्यक्ति – "हाँ, वह मुसलमान है। वह हम लोगों की बात भला क्या समझेगा?"

मुसलमान बालक – "आप लोग जल्दी निश्चय कीजिये, नहीं तो मैं जाकर दूध और फल ले आऊँगा।"

प्रधान – "अरे, हम लोग सोच तो रहे हैं, लेकिन ...।"

पहला व्यक्ति – "वह जो गामोट (गाँव का ब्राह्मण पुरोहित) है न, उसी से कहा जाय। वह ब्राह्मण है, वही संन्यासी के लिये भोजन बना देगा।"

प्रधान – "यही ठीक कह रहा है। बुलाओ उसे।"

एक व्यक्ति बुलाने गया। ब्राह्मण एक मैला कन्था लपेटे 'हू-हू' कर रोते हुए आया। उसे मलेरिया बुखार हुआ था।

प्रधान (रुक्ष स्वर में) – "संन्यासी आया है। तुम इसके लिये खाना बनाकर ले आओ। आटा मेरे घर से ले जाना।"

ब्राह्मण – "तीन दिन से बुखार चढ़ा है। स्नान भी नहीं हुआ। संन्यासी के लिये भोजन कैसे पकाऊँगा?"

प्रधान – "काम पड़ते ही तुम्हें बुखार चढ़ जाता है या और कुछ हो जाता है। वह सब नहीं चलेगा, हाँ! समझे?"

संन्यासी ने मुसलमान बालक से कहा – "कहो कि उसे बुखार है, उसके हाथ का खाना नहीं चलेगा।"

लड़के ने जब यह बात प्रधान को बताई, तो प्रधान कह उठा – "क्या मुश्किल है! अब क्या किया जाय?"

पहला व्यक्ति – "अच्छा, यदि घी में बनी वस्तु हो, तो क्या हम लोगों के हाथ का उन्हें चलेगा?"

* महाराष्ट्र के अधिकांश गाँवों में ये 'काले-हनुमान' स्थापित दिखते हैं, वैसे उनका सारा शरीर लाल हुआ रहता है।

संन्यासी – "हाँ, चलेगा।" कहकर बड़ा खुश हुआ, लेकिन प्रधान बोल उठा – "मैं गाँव का मुखिया हूँ। इसलिये खाना मेरे घर होगा।" इतनी देर के बाद यही निश्चित हुआ। उसके बाद प्रधान यह कहकर घर चला गया कि खाना तैयार हो जाने पर बुलाकर ले जायेगा। तब संन्यासी ने लड़के से कहा कि वह घर जाकर भोजन करे और सुबह फिर भेंट करे।

लड़का – "रोटी खाकर अभी आता हूँ। थोड़ा-सा गरम तेल भी लाऊँगा। आपके पाँवों में अवश्य ही काँटे घुसे होंगे। मुझे मालूम है, गरम तेल लगाने से पीड़ा दूर हो जाती है। दादाजी को भी बता आऊँगा, क्योंकि कोई ठिकाना नहीं कि मुखिया आपको कब बुलाने आयेगा। कम्बल और कमण्डल ऐसे ही रख जाना ठीक नहीं होगा। कोई उठाकर ले जा गया, तो आपको बड़ा कष्ट हो जायेगा। मैं नजर रखूँगा, आपके लौटने के बाद मैं सोने जाऊँगा।" यह कहकर बालक चला गया और घण्टे भर के भीतर ही गरम तेल लेकर आ पहुँचा। थकान के कारण संन्यासी को थोड़ी निद्रा आ गयी थी। उसने आकर जब पाँव में धीरे-धीरे तेल लगाना शुरू किया, तो संन्यासी के जाग उठने पर बोला – "आप सोइये, मैं तेल लगाता हूँ।" संन्यासी फिर सो गया।

काफी रात गये मुखिया हाथ में मशाल लिये आ पहुँचा। विशालकाय प्रधान काले यमदूत जैसा दिख रहा था। इन्हीं लोगों ने मुगलों के विरुद्ध शिवाजी की सहायता की थी।

उस रात मुखिया की स्त्री ने 'पूरन-पूड़ी' बनाया था। (यह 'पूरन-पूड़ी' ही महाराष्ट्र के लोगों का परम प्रिय व्यंजन है। दाल के साथ गुड़ या चीनी मिलाकर खूब घी डालकर सेंकते हैं। एक कटोरी में भी गरम घी रखते हैं; उसी कटोरी में गुड़ भी रहता है और उसे अचार या चटनी के साथ खाते हैं।)

संन्यासी ने देखा भोजन का स्थान नये गोबर से लीपा गया है। बैठने के लिये कुछ नहीं दिया। वे लोग स्वयं थोड़ा ऊँचे होकर बैठकर खाते हैं। आसन आदि का कोई झंझट नहीं। बिना घी लगी, एक बहुत बड़ी रोटी थाले का काम दे रही थी। उसी के ऊपर घी में पकी ४-५ पूरन-पूड़ियाँ रखी गयीं। एक कटोरी में घर का घी और गुड़ दिया। साथ में मिर्च का अचार था। पानी संन्यासी अपने कमण्डल में ले गया था। (वे लोग काँसे के बरतनों का उपयोग करते हैं और उसे जूठा मानते हैं। अन्य किसी को उसी पात्र में नहीं खिलाते। इसीलिये पूड़ियाँ एक रोटी के ऊपर रखी गयी थीं।) मुखिया भी खाने के लिये पास ही बैठा और ८-१० पूड़ियाँ सफाचट करके उठ गया। संन्यासी का भी खाना हो गया था।

मुखिया दरवाजे के पास की खाट पर चित्त लेट गया। संन्यासी उसके दूसरी ओर की खाट पर बैठकर बोला – "काले-हनुमान तक पहुँचा दो! नयी जगह है, अँधेरी रात है, मैं जाऊँगा कैसे?"

मुखिया ने कान खड़े करके सुना परन्तु हिन्दी होने के कारण कुछ समझा नहीं। संन्यासी ने जब दुबारा पहुँचा देने के लिये अनुरोध किया, तो वह फटाक से उठ बैठा और दाँत भींचते हुए बोला – "मैं दक्षिणा नहीं दूँगा, कदापि नहीं दूँगा। इतनी रात गये पूरन-पूड़ी बनावाकर खिलाया, और ऊपर से दक्षिणा चाहिये! नहीं दूँगा, नहीं दूँगा, नहीं दूँगा।"

उसका यमदूत के समान डीलडौल और हावभाव देखकर संन्यासी चिन्ता में पड़ गया। लगा कि कहीं मार खाने की नौबत न आ जाय। अँधेरा-अपरिचित गाँव और निर्जन रात में भला मैं किस प्रकार जाऊँ? मुखिया की कर्कश आवाज सुनकर उसकी पत्नी दौड़ी आयी। संन्यासी ने उससे कहा – "रास्ते में अन्धकार है, कुत्ते हैं, (पाँव में काटने के समान हाथ से संकेत करते हुए) काटेंगे!"

गृहिणी समझ गयी और बोली – "ये दक्षिणा नहीं माँग रहे हैं। अनजाने व्यक्ति हैं, इसलिये कुत्ते काट लेंगे, इसीलिये तुम्हें पहुँचा आने को कह रहे हैं।"

तब मुखिया ने संन्यासी की ओर देखते हुए कहा – "कुत्ते काट लेंगे – कहते हो!"

संन्यासी के "हाँ" कहते ही वह बोल उठा – "अरे, मैंने तो समझा कि दक्षिणा माँग रहे हो। भूल हुई, क्षमा करो।" इतना कहकर वह झुककर पाँवों में पड़ गया। उसके बाद – "क्षमा करो" – कहकर पाँव का अँगूठा चाटने लगा। इसके बाद मशाल जलाकर संन्यासी को साथ ले जाकर काले-हनुमान के मण्डप में पहुँचा आया।

वह मुसलमान बालक जागता हुआ बैठकर संन्यासी के साधारण-सी चीजों पर पहरा दे रहा था। काफी रात हो गयी देखकर उसके दादा मुल्लाजी उसे बुलाने आये। संन्यासी ने बालक के सेवा-भाव की खूब प्रशंसा की और उससे मुल्लाजी के साथ चले जाने को कहा। जाते समय वह बोला – "मगर सुबह आप चले मत जाइयेगा। मैं गरम दूध और पके केले लेकर आऊँगा। आप उसे खाने के बाद ही जायेंगे।"

सुबह स्नान आदि पूरा होने के पहले ही बालक दूध और केले लेकर हाजिर हो गया। संन्यासी ने खाते-खाते उसे मुखिया की "दक्षिणा नहीं दूँगा" वाली बात बताई। वह तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। बोला – "मैं साथ रहता, तो कोई असुविधा नहीं होती। परन्तु रात में मुझे देखने पर मराठा लोग मुझे मारते।"

संन्यासी के शोलापुर की ओर रवाना होने पर वह काफी दूर तक साथ-साथ गया था और खूब विनयपूर्वक सलाम अदब करके विदा किया था।

सुसंस्कारी मानवता का वह एक उत्कृष्ट उदाहरण था।

शोलापुर के पथ पर (क्रमशः)

संन्यासी शोलापुर के मार्ग पर चला जा रहा था। साढ़े ग्यारह-बारह बजे तक एक गाँव में पहुँचा। डाकघर के पास खड़े होकर गाँव का नाम पूछा। पोस्ट मास्टर ब्राह्मण थे। उन्होंने बाहर आकर पूछा कि संन्यासी कहाँ से आ रहा है और कहाँ जा रहा है ! इसके बाद बोले – "यह मराठा लोगों का गाँव है। अन्य वर्ण का एक मैं हूँ और अन्य एक घर है। सो कृपा करके मेरे घर पर ही भिक्षा ग्रहण करें।" संन्यासी के राजी होने पर वे उसे अपने घर ले गये और भोजन कराने के बाद धर्मचर्चा भी की। उन्होंने स्वामीजी (विवेकानन्द) के बारे में थोड़ा-बहुत पढ़ रखा था, इसीलिये रात वहीं बिताने का आग्रह किया, परन्तु संन्यासी को ठहरने की इच्छा नहीं हुई।

रात मराठा लोगों के एक अन्य ग्राम में – काले-हनुमान के मण्डप में बीती। संध्या के बाद अचानक जोरों की ढोल-नगाड़ों की आवाज सुनाई दी – मानो युद्ध का आह्वान किया गया हो। इसके बाद कुछ बड़ी-बड़ी सिंगोंवाली गो-माताओं को खूब सजाकर गाजे-बाजे के साथ लिये और वाद्य के साथ असि-चालन आदि तथा पटाकों की आवाज करते हुए हट्ठे-कट्ठे मराठा युवकों की एक टोली ग्राम के कोट-द्वार को पार करके बाहर मैदान में निकले। उन लोगों ने खूब पटाके छोड़े और हुँकार भरते हुए उछल-कूद करने लगे। मानो युद्ध का आह्वान कर रहे हों। इसके बाद वे लाठी, बल्लम आदि लेकर जंगल की ओर चले गये। गायों को अन्य लोग हाँक कर गाँव में ले गये। वे लोग जंगल में खरगोशों का शिकार करने गये थे। उधर खरगोश बहुत हैं। प्रतिवर्ष उसी समय एक बार सभी लोग वैसा करते हैं। क्षत्रिय राजपूतों में विजया -दशमी के दिन भाले से सूअर का शिकार करने की प्रथा है।

वहाँ रात बिताने के बाद अगले दिन सुबह रवाना होकर दोपहर को संन्यासी एक अन्य गाँव में पहुँचा। गाँव के चारों ओर मकई के खेत थे। देखकर लगा कि अभी-अभी फूल लगे थे। एक बड़े मकान के सामने ही कुँआ था। संन्यासी अपनी पिपासा मिटाने के लिये अपने कमण्डलु में पानी भर रहा था, तभी सामने के मकान से एक व्यक्ति बाल्टी लिये पानी भरने आया। संन्यासी को देखकर उसे नमस्कार करके पूछा – "कल भोजन हुआ है !" – इतना सुनते ही – "तो फिर भिक्षा नहीं हुई ! हमारे यहाँ चलिये, जो भी है स्वीकार करने से आनन्दित होऊँगा। दो साल बाद मकई की फसल हुई है। लोग बरतन आदि सब बेचकर किसी तरह बचे हुए हैं। गाय, बकरी तथा बैल तक बेचने को बाध्य हुए हैं।"

सुनकर संन्यासी ने सोचा कि अच्छा, तो इन लोगों को इतना कष्ट है। तो इस कष्ट का अन्न न खाकर अन्यत्र चला जाय। परन्तु उन सज्जन का आग्रह देखकर जा नहीं सका। उनके साथ उनके घर गया। देखा – घर की माँ हाथ में भात की हण्डी लिये प्रतीक्षा कर रही है। घर के अन्य दो लोग भी हाथ में मिट्टी के बरतन लिये हुए बैठे हैं। सम्भवतः इन्हीं की प्रतीक्षा में माँ खड़ी थीं। उन्हीं के बीच संन्यासी के लिये भी स्थान हुआ। संन्यासी के पास पीतल की गिलास के आकार का एक छोटी बाल्टी जैसा पात्र था (जैसा ऋषीकेश के साधु लोग दाल-भिक्षा आदि के लिये रखते हैं)। संन्यासी ने उन लोगों का मिट्टी का बरतन न लेकर उस बाल्टी में ही देने को कहा। पर एक करछुल भात देते ही, उसका रंग-रूप देख कर बिल्कुल सड़ा हुआ प्रतीत होने पर दूसरा करछुल लेने से मना कर दिया। सभी लोग नमक और मिर्च का चूर्ण मिला कर गपागप खाने लगे। संन्यासी ने भी नमक-मिर्च मिलाकर ज्योंही एक ग्रास मुँह में डाला – हे राम ! वह तो बिलकुल ही सड़ा हुआ भात था। लगा कि तत्काल उल्टी हो जायेगी। हे जगदम्बा ! हे माँ ! इनका बड़े कष्ट का अन्न है। तुम्हारी दुहाई है, यहाँ तुम उल्टी मत होने देना ! मुख दबाकर उल्टी रोकने के प्रयास से संन्यासी का चेहरा लाल हो उठा था। घर की माँ समझ गयीं और मराठी में बोलीं – "आपको कष्ट हो रहा है। आप उठ सकते हैं। हमारे घर में दूसरा अन्न नहीं है। तीन दिनों से यही पकाकर बच्चों को थोड़ा-थोड़ा रोज दे रही हूँ और वे खा रहे हैं। बस, कुछ दिनों का कष्ट है, उसके बाद मकइयाँ प्राप्त होने लगेंगी।"

अनुमति पाने के बाद संन्यासी ने उन माँ को नमस्कार करके उठकर बाहर आकर खड़ा हुआ और मुख के भात को फेंकने के बाद खूब कुल्ले करने लगा। तो भी उल्टी का भाव दूर नहीं हो रहा था। इसी बीच वे सज्जन खाकर उठने के बाद दौड़कर खेत की ओर चले गये थे। देखा कि वे ३-४ बिलकुल नरम मकई के भुट्टे लेकर हाजिर हुए – "अहा, आपका खाना नहीं हो सका। ये भुट्टे चबाइये, तो उल्टी का भाव चला जायेगा। माँ ने आपके लिये ला देने को कहा है। उन्हें बड़ा दुःख हो रहा है, कह रही हैं – "संन्यासी का खाना नहीं हुआ, परन्तु स्वामीजी घर में और कुछ नहीं है।" वह अजस्र अश्रुपात करने लगा। संन्यासी भी स्थिर नहीं रह सका, बोला – "आप लोगों को इतना अन्नकष्ट है, तो भी स्वधर्म – गृहस्थ का धर्म भूले नहीं। थोड़ा-सा जो था, उसी में से मुझे भी हिस्सा किया। इससे मैं अपने चित्त में अत्यन्त प्रसन्नता का बोध कर रहा हूँ और साथ ही इस पवित्र हृदय से दिये हुए अन्न को खा पाने में अक्षम होने के कारण लज्जित भी अनुभव कर रहा हूँ। श्रीभगवान आप लोगों का यह दुःख दूर करें – यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना है। इतना कहकर संन्यासी विदा लेकर दूसरे ग्राम की ओर चल पड़ा।

घटना हिन्दू समाज की महत्ता स्पष्ट करती है कि वह मनुष्य को कितना कर्तव्यनिष्ठ और कितना उदार बनाता है !

❖ (क्रमशः) ❖

चरित्र ही विजयी होता है (१)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रतिवर्ष की भाँति २००५ में भी रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने 'सन्त गजानन अभियांत्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव (महाराष्ट्र)' के अनुरोध पर विद्यार्थियों के लिये 'व्यक्तित्व-विकास एवं चरित्र-निर्माण' पर कार्यशाला का संचालन किया था। उनके इस महत्वपूर्ण व्याख्यान को उपरोक्त संस्थान ने 'Character Wins' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। सबकी उपयोगिता की दृष्टि से उसे 'चरित्र ही विजयी होता है' इस शीर्षक से हम 'विवेक ज्योति' में प्रकाशित कर रहे हैं। इसका हिन्दी अनुवाद और सम्पादन रायपुर आश्रम के ही स्वामी प्रपत्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

प्रस्तावना

मानव-जीवन सदा चुनौती एवं निरन्तर संघर्ष है। हमारा दैनिक जीवन एक रणक्षेत्र है, जहाँ हम अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये संघर्ष करने को बाध्य हैं। बाह्य और अन्त: प्रकृति हमें सर्वदा नीचे खींचने का प्रयास करती रहती है और हम उस प्रकृति पर विजय पाने के लिये निरन्तर संघर्षरत हैं, जो हमें नीचे खींचने का प्रयास कर रही है। बाह्य और अन्त: प्रकृति मनुष्य की चेतना पर विजय प्राप्त करना चाहती है, किन्तु मनुष्य की चेतना निरन्तर इसका प्रतिरोध कर रही है और अपने प्रभुत्व को प्रकृति के ऊपर स्थापित करने के लिये प्रकृति से संघर्ष कर रही है। दूसरे शब्दों में आत्मा प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहती है, लेकिन यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि वह बाह्य और अन्त: प्रकृति को वशीभूत नहीं कर लेती।

कैसे यह आत्मा प्रकृति से लड़ती है? हमारा अनुभव कहता है कि प्रकृति के आवेगों की अवज्ञा और उपेक्षा के द्वारा। दूसरे शब्दों में प्रकृति के आवेगों का पालन न करके। प्रकृति के इन आवेगों की अवहेलना आत्मा को शक्ति प्रदान करती है। वास्तव में, आत्मा में स्वयं ही अनन्त शक्ति है, किन्तु संसार के दैनन्दिन जीवन में, सामान्य परिस्थितियों में आत्मा की यह अनन्त, शक्ति शिथिल और सुषुप्त रहती है। दुर्भाग्यवश अज्ञान के कारण मनुष्य सोचता है और ऐसा विश्वास भी करता है कि वह दुर्बल है एवं प्रकृति उससे सबल और शक्तिवान है और उसे अपनी शक्ति और आवेगों का दास बनाने में समर्थ है। ऐसे विचार और विश्वास मनुष्य को दुर्बल और दास बना देते हैं। दूसरी ओर सत्संग अथवा प्रेरणाप्रद और उत्साहवर्धक ग्रन्थों के अध्ययन से, जब मनुष्य यह सोचना और विश्वास करना प्रारम्भ करता है कि बाह्य और अन्त: प्रकृति के विरुद्ध लड़ने की उसमें क्षमता और शक्ति है तथा वह प्रकृति की शक्तियों एवं उसकी आवेगों का दास बनने को विवश नहीं है, तब धीरे-धीरे उसके भीतर का सोया हुआ सिंह जगने लगता है और तब एक समय आता है कि वह स्वयं अनुभव करता है कि स्वयं उसमें अदम्य और अजेय शक्ति है, जिससे वह बाह्य और अन्त: प्रकृति को जीत सकता है, वह स्वयं अपना स्वामी बन सकता है, वह प्रकृति का स्वामी बन सकता है। बाह्य और अन्त: प्रकृति के विजय का नाम ही 'चरित्र' है। चरित्र की शक्ति के द्वारा ही मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है तथा स्वयं अपना अजेय स्वामी हो जाता है। अन्तत: चरित्र ही विजयी होता है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मनुष्य में दैवी शक्तियों की अभिव्यक्ति और विकास होने को ही चरित्र कहते हैं। यह दैवी शक्ति प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सुषुप्त और शिथिल अवस्था में रहती है। जब तक इसे जगाकर मनुष्य के चरित्र के विकास के लिये इसका ठीक से उपयोग नहीं कर लिया जाता, तब तक यह सुषुप्त, जड़वत् और व्यर्थ ही रहती है तथा अन्त में मनुष्य अपने चरित्र का विकास किये बिना ही मर जाता है। यह लाखों लोगों का सर्वाधिक दुर्भाग्य है, जो अपने चरित्र-निर्माण पर ध्यान नहीं देते और सुखी और सार्थक जीवन जीने की ओर अग्रसर नहीं होते।

यदि हम अपने आप-पास के व्यक्तियों का निरीक्षण करें तथा स्वयं का आत्मनिरीक्षण करें, तो हम पायेंगे कि हमारे दैनिक जीवन तथा आचरण का सर्वाधिक समय स्वयं प्रकृति के ही द्वारा नियन्त्रित और निर्देशित किया जाता है। हम लोग प्राय: अचेतनता से कार्य करते चले जा रहे हैं, हम यह भी नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं और किसके लिये कर रहे हैं। हम लोग मशीन या रोबोट की तरह अन्धों के समान प्रकृति के अन्धशक्तियों के अधीन होकर कार्य करते चले जा रहे हैं। यही कारण है कि हम अपने समाज में बिरले ही चरित्रवान व्यक्तियों को पाते हैं।

मानव-शिशु जन्म के साथ ही सम्पूर्ण विकसित नहीं होता, वह अपूर्ण रहता है। वह कुछ प्रसुप्त गुणों और शक्तियों को लेकर जन्म लेता है, जिसे ठीक समय पर बच्चे को चरित्रवान बनाने और उसके जीवन को सार्थक बनाने के लिये क्रियान्वित और विकसित करना होता है।

चरित्र-निर्माण एक सचेतन और निरन्तर चलने वाली प्रकिया है, जिससे वह जानता है, वह प्रबुद्ध होता है और वह अपनी सुषुप्त छिपी शक्तियों का विकास करता है तथा अपने जीवन के सार्थक उद्देश्य हेतु उन्हें अभिव्यक्त करता है

तथा एक उद्देश्यपूर्ण जीवन यापन करता है।

जब तक व्यक्ति अपनी सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर उनका सदुपयोग नहीं कर लेता, तब तक उसका जीवन सार्थक नहीं हो सकता।

१. मानव-उत्तरदायित्व

'चरित्र कैसे विजयी होता है', इसे समझने के लिये हमें स्वयं मानव के व्यक्तित्व का संक्षेप में निरीक्षण करना होगा। हम मानव के व्यक्तित्व को सभी व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु, इसे सरलता से समझने और हितकारी बनाने के लिये, इसे दो भागों में बाँट सकते हैं। हम कह सकते हैं कि हमारे व्यक्तित्व के दो भाग हैं – पहला बाहरी और दूसरा आन्तरिक। हमारा शारीरिक बाह्य रूप और बाहरी आचरण मानव के व्यक्तित्व के बाह्य रूप हैं। हमारे विचार, भाव और संवेदनायें, ये हमारे व्यक्तित्व के आन्तरिक रूप हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का आन्तरिक रूप ही उसका सच्चा व्यक्तित्व है। यदि हम अपने क्रिया-कलापों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण करें, तो पायेंगे कि हमारे सभी क्रिया-कलापों का मूल हमारे विचार ही हैं। हम जो कुछ भी भौतिक क्रियायें करते हैं, उन सबका उद्गम-स्थान हमारा मन ही है, और उसके बाद ही वह कार्य रूप में परिणत होता है। जब हमारी क्रियायें बार-बार दीर्घ काल तक पर्याप्त मात्रा में पुनरावृत्त होती हैं, तब वे आदत बन जाती हैं और हम सभी यह जानते हैं कि हमारी आदतों का पुंज ही हमारा चरित्र है, जिसे व्यक्ति स्वयं निर्मित एवं संस्कारित करता है।

२. चरित्र

अब हम यह समझने का प्रयास करें कि 'चरित्र' का क्या तात्पर्य है? जब शहीद भगत सिंह से यह कहा गया कि यदि वे भारत के गवर्नर जनरल के पास क्षमा-याचिका पत्र प्रस्तुत कर निवेदन करें और यह स्वीकार करें कि अँग्रेजी सरकार के विरुद्ध क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलग्न होकर उन्होंने भूल की है तथा यह प्रतिज्ञा करें कि वे भविष्य में किसी क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलग्न नहीं होंगे, तो उन्हें क्षमा कर दिया जायेगा। शहीद भगत सिंह ने उत्तर दिया — "ऐसी बात सोचना भी मेरे लिये शर्म की बात होगी। मैं अपने देश की स्वतन्त्रता और अपने देशवासी भाइयों की मुक्ति के लिये अपने जीवन का बलिदान करने को तत्पर हूँ। मैं भारत के गवर्नर जनरल के पास क्षमा-याचिका पत्र देने की बात सोचने की अपेक्षा मरना अधिक श्रेयस्कर समझूँगा।

भगत सिंह के हृदय में ऐसा मौलिक साहस कहाँ से आया? स्वाभाविक है कि यह उनके हृदय की गहराई से ही आया। ऐसा मौलिक साहस, उस महान वीर की दृढ़ आस्था, अपने देश तथा देशवासियों के प्रति प्रेम और ब्रिटिश सरकार के अत्याचार को समूल उखाड़ फेंकने के दृढ़ संकल्प से उत्पन्न हुआ।

उपरोक्त घटना से यह सिद्ध होता है कि भगत सिंह ने इस विचार को बहुत दिनों से अपने मन में पोषित कर रखा था कि वे भारत की स्वतन्त्रता और अपने देशवासियों की मुक्ति के लिय सब कुछ करेंगे। इसका तात्पर्य है कि उन्होंने बचपन से ही एक उच्च और महान आदर्श अपने मनस्-चक्षुओं के सामने रखा था और उस आदर्श को अपने जीवन में रूपायित करने के लिये प्रतिदिन सब प्रकार से अपने को तैयार किया था।

यह एक उदाहरण हमारे सामने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है कि मनुष्य को अपने चरित्र-निर्माण के लिये अपने सम्मुख एक उच्च और महान आदर्श रखने की नितान्त आवश्यकता है। केवल उच्च आदर्श को स्वीकार कर लेने मात्र से किसी को बहुत अधिक सहायता नहीं मिलेगी। दिन-रात उस आदर्श का चिन्तन करना होगा, उस पर विचार करना होगा, बार-बार जितना अधिक सम्भव हो सके, उस आदर्श का मनन करना होगा, बार-बार उस आदर्श का निदिध्यासन करना होगा, तब वह हमारे व्यक्तित्व में पूर्णत: समाहित हो सकेगा और हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन जायेगा। विचारों और आदर्शों का इस प्रकार का सम्मिश्रण ही व्यक्ति को चरित्रवान बनाता है। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन में स्वीकृत विचारों और आदर्शों को इस प्रकार उपरोक्त प्रणाली के अनुसार समाहित कर लेता है, तब वह अपने आदर्श के विरुद्ध स्वप्न में भी कुछ दूसरा स्वीकार नहीं करता है। इस प्रकार का दृढ़ विश्वास और आदर्श का एकीकरण, व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करता है। ऐसा सुगठित चरित्र कभी भी, किसी भी मूल्य पर च्युत नहीं होता, वह अटल तथा दृढ़ रहता है। एक चरित्रवान व्यक्ति निश्चित रूप से जानता है कि वह किसलिये जी रहा है और यह भी अधिक निश्चित रूप से जानता है कि वह उसके लिये मरने को भी प्रस्तुत है। महान सिक्ख गुरुगण इस महान चरित्र के ज्वलन्त उदाहरण हैं। गुरु तेग बहादुर, गुरु गोविन्द सिंह और उनके अनेकों शिष्यों ने अमानवीय अत्याचार को धैर्यपूर्वक सहन किया और अपने महान धर्म के लिये अपना जीवन बलिदान कर दिया, जिसे उन्होंने अपने जीवन का आदर्श स्वीकार किया था।

हमारे वर्तमान इतिहास के दूसरे दृष्टान्त हैं, हमारे देश के महान स्वतन्त्रता सेनानी, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के चंगुल से भारत को स्वतन्त्र कराने का लक्ष्य सुनिश्चित किया था। लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, मदन मोहन मालवीय, सरदार पटेल और अनेकों दूसरे राजनेताओं ने अपने जीवन के सभी सुख-सुविधाओं का त्याग कर दिया, वे लोग कठिन परिस्थितियों में भी अपने परिवार को छोड़कर जेलों में गये और उसमें वर्षों तक रहे, लेकिन कभी भी

(शेष अगले पृष्ठ पर)
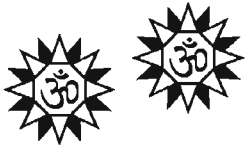
स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण
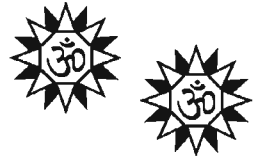
ई. टी. स्टर्डी

(धन्य थे वे लोग, जिन्होंने स्वामीजी के काल में जन्म लिया तथा उनका पुण्य सान्निध्य प्राप्त किया। उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोगों ने अपनी अविस्मरणीय स्मृतियाँ लिपिबद्ध की हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत संस्मरण अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ से गृहीत तथा अनुवादित हुआ है। – सं.)

यद्यपि मैं आपके महान् पूर्ववर्ती स्वामी विवेकानन्द की स्मृति-सभा में उपस्थित न हो सकूँगा, तो भी मुझे लगता है कि उसमें भाग लेनेवाले लोग, एक ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत उनकी एक रूपरेखा को पसन्द करेंगे, जो उनके साथ अत्यन्त घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहा हो।

स्वामी विवेकानन्द के इस देश से विदा हुए करीब चालीस वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु मेरे मानस-पटल पर वे जो स्मृतियाँ छोड़ गये हैं, वे आज भी उतनी ही तरो-ताजा हैं, जितनी कि उनकी यहाँ से विदाई वाले दिन थीं।

वैसे मेरी स्मरण-शक्ति बहुत तेज नहीं है। स्वामीजी में एक गुण था, जिसे संस्कृत में 'ओजस्' कहते हैं। जो शारीरिक बल, पौरुष, प्राणशक्ति तथा तेज का द्योतक है।

वस्तुत: उनके व्यक्तित्व में चुम्बक जैसे आकर्षक के साथ ही महान् प्रशान्ति का समावेश था। चाहे वे सड़क पर चल रहे हों या कमरे में खड़े हों, उनमें सर्वदा वही गरिमा परिलक्षित होती थी।

वे बड़े हँसमुख तथा विनोदी स्वभाव के थे और उसके साथ ही उनमें सहज भाव से दीन-दुखियों के प्रति परम सहानुभूति तथा करुणा का भाव जुड़ा हुआ था। मित्र के रूप में वे मधुर तथा मोहक थे और समागत किसी भी परिवेश में वे सहज भाव से रम जाते थे।

मैंने पाया कि उनके सम्पर्क में आनेवाले सभी श्रेणियों के शिक्षित लोग उनमें अन्तर्निहित सज्जनता की ओर आकृष्ट होते और प्रशंसा करते। उनकी उपस्थिति में ऐसा बोध होता रहता कि वे सर्वदा ईश्वर के सान्निध्य का अनुभव कर रहे हैं। टहलते समय, यात्रा करते समय तथा फुरसत के क्षणों में भी उनके मुख से स्वत:स्फूर्त भाव से कोई प्रार्थना या भक्तिपूर्ण उद्गार व्यक्त होते रहते थे।

धर्माचार्य के रूप में, छात्र की कठिनाई को समझने की उनमें महान् क्षमता थी और वे बड़े सहज शब्दों में उसकी व्याख्या तथा समाधान बता देते। पर इसके साथ ही सूक्ष्म विचारों के राज्य में भी वे स्वच्छन्द विचरण करते थे।

कील विश्वविद्यालय के तत्कालीन अध्यक्ष डॉक्टर पॉल डायसन के साथ उनकी चर्चा मुझे अब भी भलीभाँति याद है। शापेनहावर तथा वान हार्टमैन ने अन्ध-इच्छा (blind will) तथा अचेतन (Unconscious) को अपने दर्शन की नींव बनाकर जो भूल की थी, उसे दिखाते हुए स्वामीजी ने कहा था कि उल्टे किसी कामना या इच्छा के पूर्व समष्टि मन का होना आवश्यक है। दुर्भाग्यवश यह भूल आज तक जारी है और एक गलत शब्दावली के प्रयोग द्वारा पाश्चात्य मनोविज्ञान को काफी विकृत कर रही है।

अपने वक्तव्य का उपसंहार करते हुए मैं यही कहना चाहूँगा कि यद्यपि ज्ञान का उदय होने पर हम हर प्राणी में ईश्वर का दर्शन कर पाते हैं, तथापि उन्हें किन्हीं सज्जन तथा महात्माओं में अभिव्यक्त हुआ देखना बड़े सौभाग्य की बात है। स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही व्यक्तियों में एक थे।

(वेदान्त-केसरी, फरवरी १९३७ से)

❑❑

(पिछले पृष्ठ का शेषांश)

समझौता नहीं किया और अपने आदर्श को नीचा नहीं किया। अपने आदर्श को अनुसरण करने का उनका दृढ़ संकल्प वज्र से भी कठोर था। एक ऐसा समय आया जब सबसे शक्तिशाली अत्याचारी ब्रिटिश सरकार, जो अपनी सेना को अजेय मानती थी, उसे भी इन चरित्रवान व्यक्तियों के सम्मुख अपने आपको समर्पित कर देना पड़ा तथा नि:शर्त भारत छोड़कर जाना पड़ा। यह चरित्र की अजेय शक्ति है। ❖ **(क्रमश:)** ❖

मौन की महत्ता

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

हममें से प्रत्येक ने जीवन में कभी-न-कभी मौन के लाभकारी प्रभाव का अनुभव किया होगा। एक अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति भी अपनी चर्या में नियमित अवकाश का स्थान रखता है। मौन जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक उपादान प्रतीत होता है। जब हम किसी निर्जन स्थली अथवा झील के किनारे या उपवन में घूमते होते हैं अथवा पर्वत के शिखर पर पहुँच कर प्रकृति के रूप-माधुर्य का पान करते होते हैं, तो हम वास्तव में अनजाने मौन की खोज में होते हैं और उसका उपभोग करते हैं, पर हमें हर समय मौन की इस महत्ता का भान नहीं होता। जीवन में मन-बहलाव के ऐसे अवसर भले ही बहुत कम प्राप्त होते हैं, पर जब कभी वे मिलते हैं, तो हम उस प्रभाव को नहीं भूल सकते, जो प्रकृति के साथ तादात्म्य हमारे चरित्र पर डालता है। फिर, कभी जब हम मध्य रात्रि में उठ जाते हैं, जिस समय चारों ओर एक गहरी निस्तब्धता छाई होती है, उस समय हमें एक अभिनव अनुभूति होती है। ऐसा लगता है कि रात्रि का गहरा मौनभाव मानो हमारे अन्तर में घुसा जा रहा है। हाँ, यह भी सम्भव है कि मौन कभी भयावह भी हो जाय। कई लोग शब्द का नितान्त अभाव नहीं सह सकते। किन्तु इन अपवादों को यदि हम छोड़ दें, तो हममें से अधिकांश लोग बीच बीच में प्रकृति के स्पर्श से अथवा घर में ही प्राप्त होने वाले मौन का स्वागत करते हैं और उससे लाभान्वित होते हैं।

कभी कभी जब हम अकेले होते हैं और जब सब कुछ शान्त होता है, तो हमें एक प्रकार की स्फूर्ति प्राप्त होती है और हमारे स्नानुयों को ताजगी मिलती है। हमारी खोई हुई शक्ति लौट आती है। कुल मिलाकर प्रभाव यह होता है कि हमारा तन और मन दोनों प्रफुल्ल हो जाते हैं।

फिर, सुषुप्ति भी जीवन में मौन की आवश्यकता को सिद्ध करती है। हम दिन भर कितने ही व्यस्त क्यों न हों, रात्रि में उस घड़ी की चाह रखते हैं जब हमारे विचार और भावनाएँ, इच्छाएँ और आशाएँ, चिन्ताएँ और जिम्मेदारियाँ – सब कुछ पीछे छूट जाती हैं। वह गहरी नींद है क्या? क्या वह मौन का ही अवसर नहीं है। यद्यपि हम उस अवस्था में सभी कुछ पीछे छोड़ जाते हैं, यहाँ तक कि शरीर का बोध भी छूट जाता है, तथापि उससे हम आनन्द प्राप्त करते हैं। वास्तव में निद्रा कोई शून्यता नहीं है। निद्रा के रहस्य को जानने के लिए न तो हमारे पास समय होता है और न रुचि ही। हम उस अवस्था में आराम और शान्ति पाते हैं – बस यही हमारे लिए पर्याप्त होता है। किन्तु उपनिषद् इस अवस्था के सम्बन्ध में बड़ा प्रकाश डालते हैं। उपनिषदों के अनुसार, सुषुप्ति मानव-चेतना को विश्व-चेतना की भूमि के सन्निकट ले जाती है। यह विश्व-चेतना असीम शान्ति की अवस्था है। यही कारण है कि हम नींद से जागने पर इतना तरोताजा अनुभव करते हैं।

मौन का मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन में भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। महात्मा गाँधी मौन के महत्त्व को स्वीकार करते थे। संत विनोबा भावे ने तो मौन को अपने जीवन का एक अंग ही बना लिया था। मौन की महत्ता के आधार पर ही इसकी परिभाषा मुनि के आचरण से दी गई है। यदि हम मौन के आध्यात्मिक महत्त्व की बात को छोड़ भी दें, तो भी हमारे भौतिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिये मौन परम आवश्यक है। मौन का प्रारम्भिक अभ्यास यह है कि हम कुछ समय के लिए चुपचाप बैठ जाएँ और मन में किसी गम्भीर विचार या क्रियाशीलता को न पैठने दें। इस प्रकार भले ही वह दस मिनट के लिए क्यों न हो, यदि हम अपने आप में स्थित रहें, तो वह हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी 'टॉनिक' का काम करता है। इस अभ्यास से हमारी चिन्ताएँ और मन की चंचलता भी कम होती है। मौन की आश्चर्यजनक शक्ति ब्राह्म मुहूर्त में अनुभव की जा सकती है। उस समय सब कुछ निस्तब्ध रहता है। रात्रि के गाम्भीर्य को यदि हम अपने हृदय में अनुभव करने का प्रयत्न करें, तो इससे आश्चर्यजनक रूप से मन का तनाव दूर होगा।

❑ ❑ ❑

खेतड़ी : कुछ अन्य बातें

स्वामी विदेहात्मानन्द

राजाजी की आदतों में सुधार : एक घटना

स्वामी अखण्डानन्दजी को महल में ही रहने का स्थान दिया गया था। जिधर राजाजी सोते थे, उसके दूसरी ओर के बरामदे में स्वामीजी का आसन था। स्वामीजी बड़े भोर में ही उठकर ध्यान-साधना आदि में लग जाते, पर राजाजी कभी ८ बजे के पहले नहीं जागते थे। एक दिन अखण्डानन्दजी ने राजाजी से पूछा – "आप शय्यात्याग किस समय करते हैं? आपको कबसे देर से उठने की आदत है? यह आदत स्वास्थ्य के लिये अच्छी नहीं है। विशेषकर एक राजा के लिये तो बहुत ही बुरी है। आपके ऊपर इतने लोगों की रक्षा का उत्तरदायित्व है और आप निश्चिन्त होकर ९ बजे तक सोते रहें, क्या यह राजधर्म के अनुकूल है?"

राजाजी ने सरलतापूर्वक विनम्र स्वर में उत्तर दिया, "यह आदत मुझमें काफी काल से है। जब मैं जयपुर में रहता था, तभी से ऐसी आदत है। जयपुर दरबार के स्वर्गीय महाराज सवाई रामसिंहजी की मुझ पर बड़ी कृपा थी। मेरी देखभाल भी वे स्वयं ही करते थे। मैं प्राय: उनके पास ही रहा करता था। महाराज रात को ३ बजे तक बिलियर्ड खेला करते थे। मैं भी उन्हीं के साथ रहता और खेलता था। उसके बाद सोता था। ऐसी दशा में देर से उठने की आदत पड़ जाना स्वाभाविक ही है। महाराज १० बजे तक उठते थे और मैं ८-९ बजे। तभी से यह आदत है।"

अखण्डानन्दजी बोले – "अब आपके लिये ऐसा करना उचित नहीं है। नीतिकारों ने असमय सोने की बड़ी निन्दा की है।" यह कहकर उन्होंने एक श्लोक उद्धृत किया –

कुचेलिनं दन्त-मलापधारिणम्।
बह्वाशिनं निष्ठुर-वाक्य-भाषिणम्।।
सूर्योदये चास्तमये च शायिनम्।
विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम्।।

– "यदि कोई गन्दे वस्त्र पहनता हो, दाँतों को साफ न करता हो, अत्यधिक भोजन करता हो, कटु वचन बोलता हो और सूर्योदय या सूर्यास्त समय बिस्तर में लेटा रहता हो; तो वे नारायण भी हों, तो लक्ष्मी उसे त्याग देती हैं।" इस चर्चा के अगले दिन से ही राजाजी ने सुबह जल्दी उठना शुरू कर दिया। बात-की-बात में उन्होंने अपनी इतनी पुरानी आदत छोड़ दी। इस घटना में राजाजी की सरलता तथा अच्छी बातों को ग्रहण करने का अनुराग लक्षणीय विषय है।[१]

अखण्डानन्दजी ने स्वयं भी पुरानी बातें याद करते हुए कहा था, "खेतड़ी के राजा देर से उठते थे। एक दिन मैंने कहा, 'जो अधिक खाता है और जो देर से सोकर उठता है, ऐसे लोगों को लक्ष्मी छोड़कर चली जाती है।' तब से वे भोर में उठने लगे – मुझसे भी पहले। उठकर देखता हूँ, महाराजा हँस रहे हैं, कभी छत पर टहल रहे हैं, कभी रोशनी जलाकर पढ़ रहे हैं, उनका ग्रन्थालय बहुत बड़ा था।"[२]

राजाजी के क्षमा-गुण के प्रसंग में एक दिन की घटना का वर्णन करते हुए अखण्डानन्द जी लिखते हैं – "मैंने स्वयं देखा, एक पंजाबी फक्कड़ राजाजी के समीप उपस्थित होकर अकारण उन्हें गालियाँ देने लगा, फिर भी उनकी धैर्यच्युति नहीं हुई, बल्कि उसकी सेवा का यथोचित प्रबन्ध कर अपनी स्वाभाविक शिष्टता का परिचय देने में ही उन्होंने आनन्द माना। इस क्षमाशीलता एवं अतिथि-सत्कार-परायणता का उनके दरबारियों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा था।"[३]

राजापुताना के अन्य स्थानों में

खेतड़ी में निवास करते समय अखण्डानन्द जी राजपुताना में ही आसपास के अन्य स्थानों पर भी जाकर स्वामीजी के आदर्शों के अनुरूप कार्य आरम्भ करने का प्रयास करते थे। वे लिखते हैं – "पाँच-छह महीने खेतड़ी में निवास करने के बाद मैं (१८९५ ई. में) चिड़ावा ग्राम गया। जाते समय अस्तबल के कर्मचारियों ने मेरे चढ़ने के लिये एक काना तथा बड़ा ही दुर्दमनीय घोड़ा दे दिया था। उस घोड़े ने मुझे नीचे गिरा दिया, जिसके फलस्वरूप मेरे हाथ में पीड़ा होने लगी। इस चिड़ावा ग्राम में अनेक बड़े बड़े व्यवसायियों का निवास है। खेतड़ी राज्य के आदर्श पर मैंने वहाँ भी एक वैदिक विद्यालय की स्थापना की। मेरे खेतड़ी से जाने के बाद (नाथद्वारा से) रघुनाथ भण्डारी के पुत्र गोपाल सिंह को साथ लेकर खेतड़ी आये। स्टेशन पर दुर्घटना में उनका पाँव कट गया था। वे खेतड़ी में उनकी चिकित्सा कराते रहे और मुझे खेतड़ी लौट आने के लिये पत्र लिखा। मेरे खेतड़ी आने पर वह बोला – 'नाथद्वारा

१. आदर्श नरेश, पृ. १३९; खेतड़ी-नरेश और ... , पृ. ९०-९१
२. अखण्डानन्द के सान्निध्य में, स्वामी निरामयानन्द, पृ. २८
३. खेतड़ी-नरेश और स्वामी विवेकानन्द, सं. १९२७, भूमिका, पृ. ५

का स्कूल बन्द हो गया है। आप ही गोपाल की शिक्षा का बन्दोबस्त कीजिये।' खेतड़ी से विदा लेने के पूर्व ही मैंने मलसीसर में गोपाल की शिक्षा की व्यवस्था कर दी थी।

''वहाँ (मलसीसर) से मैंने अलसीसर, झुंझुनू, नवलगढ़, खण्डेला, लोहारू, सूरजगढ़ आदि विख्यात ग्रामों में जाकर वहाँ के जमींदारों को प्रजा के कल्याण हेतु मनोनियोग करने का उपदेश दिया।''[४]

कुछ पत्र-व्यवहार

राजा अजीतसिंह अथवा स्वामी अखण्डानन्दजी जब कभी खेतड़ी के बाहर जाते, तो भी पत्र द्वारा आपसी सम्पर्क बनाये रखते। राजा द्वारा लिखित एक पत्र का हम पहले उल्लेख कर आये हैं, दूसरा इस प्रकार है –

माउंट आबू, **१६ जून, १८९५**

प्रिय स्वामीजी महाराज,

मुंशी जगमोहन लाल से यह सुनकर मैं परम आनन्दित हुआ कि आप जयपुर में ठहरे हुए हैं और मेरी प्रसन्नता पूछते हैं। शायद आप जानते होंगे, एक स्वामी ज्ञानानन्दजी यहाँ कई दिनों से ठहरे हुए थे, पर वे कल चले गये। अच्छे व्यक्ति हैं और जब मिलने के लिये आते थे, तब मुझे प्रसन्नता होती थी। सम्भवत: वे आपसे भी जयपुर में मिल सकते हैं।

कई दिनों से यहाँ बराबर वर्षा हो रही है, अत: यहाँ अधिक ठहरना पसन्द नहीं है। पर मैं ठीक नहीं कह सकता कि यहाँ से कब चलूँगा। क्योंकि मेरे देश के भाग में वर्षा होने का संवाद नहीं मिला है। अनुमान करता हूँ कि अब तक निस्सन्देह गर्म हवा चलनी बन्द हो गयी होगी। परन्तु अब भी समतल भूमि में झुलसन-सी गर्मी होगी। आपको जयपुर में इसका कैसा अनुभव होता है और आजकल वहाँ गर्मी कितनी डिग्री है?

आपने मुंशी जगमोहन लाल से सुना होगा कि **मुझे श्रीस्वामी विवेकानन्दजी का पत्र कुछ समय पहले मिला था।** उसमें लिखा है कि भारतवर्ष कब तक लौटना होगा, इस सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं है।

आशा है, जब यह पत्र आपको मिलेगा, आप पूर्ण रूप से स्वस्थ होंगे।

आपका

अजीतसिंह[५]

उपरोक्त पत्र में उल्लेखित स्वामीजी का पत्र उपलब्ध नहीं है, पर इसके थोड़े बाद ही अमेरिका से ९ जुलाई १८९५ को महाराजा को लिखित स्वामीजी का दूसरा पत्र आंशिक रूप से प्राप्त है, जो इस प्रकार है – ''मेरे भारत लौटने के बारे में बात इस प्रकार है। जैसा कि आप अच्छी तरह जानते हैं मैं अपनी धुन का पक्का हूँ। मैंने इस देश में एक बीज बोया है, वह अभी पौधा बन गया है और मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही वह वृक्ष हो जायेगा। मेरे दो-चार सौ अनुयायी हैं। मैं यहाँ कई संन्यासी बनाऊँगा, तब उन्हें काम सौंपकर भारत जाऊँगा। जितना ही ईसाई पादरी मेरा विरोध करते हैं, उतना ही मैंने ठान लिया है कि मैं उनके देश में स्थायी चिह्न छोड़कर जाऊँगा।... इस समय तक लन्दन में मेरे कुछ मित्र बन चुके हैं। मैं वहाँ अगस्त के आखिर तक जाऊँगा।... इस शीतकाल का कुछ समय लन्दन में और कुछ न्यूयार्क में बिताऊँगा। फिर मैं भारत आने के लिए स्वतंत्र हो जाऊँगा। भगवान की कृपा हुई तो इस सर्दी के बाद यहाँ काम चलाने को काफी आदमी होंगे। **हर काम को तीन अवस्थाओं में से गुजरना होता है – उपहास, विरोध और फिर स्वीकृति।** जो मनुष्य अपने समय से आगे विचार करता है, लोग उसे निश्चय ही गलत समझते हैं। इसलिए विरोध और अत्याचार हम सहर्ष स्वीकार करते हैं; परन्तु मुझे दृढ़ और पवित्र होना चाहिए और भगवान में अपरिमित विश्वास रखना चाहिए, तब ये सब लुप्त हो जायेंगे। इति।

विवेकानन्द[६]

स्वामीजी के इंग्लैंड से अखण्डानन्दजी के नाम लिखे हुए दो पत्र भी प्राप्त हैं। पहला १८९५ ई. के ही सम्भवत: सितम्बर-अक्तूबर माह में लिखा गया है, जो इस प्रकार है –

स्नेहास्पद,

तुम्हारे पत्र से सारे समाचार ज्ञात हुए। तुम्हारा संकल्प अति सुन्दर है, परन्तु तुम्हारे देश में संगठन की शक्ति का एकदम अभाव है। वही अभाव सब अनर्थों का मूल है। मिल-जुलकर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। संगठन के लिए सबसे पहले आज्ञा-पालन की जरूरत है। इच्छा हुई तो कुछ किया अन्यथा चुपचाप – इस तरह कोई कार्य नहीं होता है। धैर्य के साथ परिश्रम और लगन होना चाहिए। नियमित पत्र-व्यवहार अर्थात् तुम लोग क्या कर रहे हो तथा उसका फल क्या हो रहा है, इसका पूरा विवरण हर महीने अथवा महीने में दो बार मुझे लिखकर भेजोगे। यहाँ (इंग्लैंड) के लिए एक ऐसे संन्यासी की आवश्यकता है, जो भलीभाँति अंग्रेजी तथा संस्कृत जानता हो। मुझे शीघ्र ही यहाँ से अमेरिका जाना है, उसको यहाँ मेरी अनुपस्थिति में कार्य करना होगा। शरत् और शशी इन दोनों के सिवाय और कोई मुझे नजर नहीं आ रहा है। शरत् को मैं रुपये भेज चुका हूँ और मैंने उसे पत्र देखते ही रवाना होने को लिखा है। राजाजी को भी मैं लिख चुका हूँ कि वे मुम्बई-स्थित अपने एजेंट के

४. स्मृतिकथा (बँगला), स्वामी अखण्डानन्द, पृ. १२१

५. खेतड़ी-नरेश और स्वामी विवेकानन्द, सं. १९२७, पृ. ९३-९४

६. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ४, पृ. ३३०

द्वारा शरत् को अच्छी तरह से जहाज में बैठाने की व्यवस्था करें। यदि हो सके तो याद रखकर तुम उसके साथ एक बोरी मूँग, चना तथा अरहर की दाल तथा कुछ मेथी भेजना। पत्र लिखते समय मुझे इन वस्तुओं की याद नहीं रही। **पं. नारायण दास, मा. शंकरलाल, ओझाजी, डॉक्टर तथा अन्य सभी लोगों से मेरी प्रीति कहना।** क्या गोपी की आँख की दवा यहाँ मिलेगी? सर्वत्र ही 'पेटेंट' दवाओं में धोखाधड़ी चलती है। उससे तथा अन्य शिष्यों से मेरा आशीर्वाद कहना। यज्ञेश्वर बाबू ने मेरठ में कोई सभा स्थापित की है, वे हम लोगों के साथ मिलकर कार्य करना चाहते हैं। सुना है कि उनकी कोई पत्रिका भी है, काली को वहाँ भेज दो, यदि हो सके, तो वहाँ जाकर वह एक केन्द्र स्थापित करे और जिससे हिन्दी में उस पत्रिका का प्रकाशन हो, ऐसा प्रयत्न करे। बीच-बीच में मैं कुछ रुपये भेजता रहूँगा। मेरठ जाकर वहाँ की यथार्थ स्थिति मुझे लिखते ही मैं कुछ रुपये भेज दूँगा। अजमेर में एक केन्द्र स्थापित करने का प्रयत्न करना। सहारनपुर में पं. अग्निहोत्रीजी ने कोई सभा स्थापित की है। उन लोगों ने मुझे एक पत्र भी लिखा है। उन लोगों के साथ पत्र-व्यवहार करते रहना। सब के साथ मेलजोल रखना। कर्म करो, कर्म करो! इस तरह केन्द्र स्थापित करते रहो। कलकत्ता तथा मद्रास में केन्द्र पहले से है ही, यदि मेरठ और अजमेर में सम्भव हो सके, तो बहुत ही अच्छा होगा। धीरे-धीरे इस प्रकार विभिन्न स्थानों में केन्द्र स्थापित करते रहो। यहाँ पर मुझे पत्र आदि इस पते पर भेजना – द्वारा श्री ई. टी. स्टर्डी, हाई विउ, कैवरशम, रीडिंग, इंग्लैण्ड; मेरा अमेरिका का पता इस प्रकार है – द्वारा कुमारी फिलिप्स, १९ पश्चिम ३८ नं. रास्ता, न्यूयार्क। क्रमशः दुनिया में छा जाना होगा। सर्वप्रथम आज्ञापालन आवश्यक है। अग्नि में कूदने के लिए तैयार रहना चाहिए – तब कहीं कार्य होता है।... उसी प्रकार राजपुताने के गाँव-गाँव में सभा स्थापित करो।

किमधिकमिति,

विवेकानन्द[७]

१३ नवम्बर को उन्होंने लन्दन से दूसरा पत्र लिखा –

प्रिय अखण्डानन्द,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। तुम जैसा काम कर रहे हो वह बहुत अच्छा है। रा... (राजाजी?) बड़े उदार और मुक्तहस्त हैं, पर इसलिए उन पर अत्याचार न हो। श्रीमान् ... का धन-संग्रह करने का संकल्प अच्छा है, पर भैया, यह संसार बड़ा ही विचित्र है; काम-कांचन से पिण्ड छुड़ाना ब्रह्मा-विष्णु तक के लिए दुष्कर है। जहाँ रुपये-पैसे का सम्बन्ध है, वहीं गड़बड़ होने की सम्भावना है। अतः मठ के लिए धन-संग्रह आदि का काम किसी को न करने देना। रा... (राजाजी?) के अलावा भारतवर्ष के किसी भी अन्य गृहस्थ को मैं अब भी निःसन्देह मित्र के रूप में नहीं जानता। मेरे या हमारे नाम से कोई गृहस्थ मठ के लिए या किसी दूसरी बाबत चन्दा वसूल कर रहे हैं, यह सुनते ही सन्देह करना और उनका साथ मत देना। विशेषकर गरीब गृहस्थ अपना अभाव दूर करने के लिए तरह-तरह के बहाने किया करते हैं। अतः यदि कभी कोई धनी, विश्वासी, भक्त और सहृदय गृहस्थ मठ आदि बनाने के लिए उद्योग करे, अथवा संगृहीत धन किसी धनी और विश्वासी गृहस्थ के पास जमा हो, तो अच्छी बात, नहीं तो उससे अलग रहना। वरन् औरों को भी इस कार्य से मना करना। तुम बालक हो, कांचन की माया नहीं समझते। मौका मिलने पर अतीव नीति-परायण व्यक्ति भी प्रवंचक बन जाता है। यही संसार है। रा... से रुपये-पैसे के बारे में कुछ न कहना। चार आदमी मिलकर कोई काम करना हमारी आदत ही नहीं। इसीलिए हमारी इतनी दुर्दशा हो रही है। **जो आज्ञा-पालन करना जानते हैं, वे ही आज्ञा देना भी जानते हैं। पहले आदेश-पालन करना सीखो।** इन पाश्चात्य जातियों में स्वाधीनता का भाव जैसा प्रबल है, आदेश-पालन का भाव भी वैसा ही प्रबल है। हम सभी स्वयं को बड़ा समझते हैं, इससे कोई काम नहीं बनता। महा उद्यम, महा साहस, महा वीरता और सर्वप्रथम आज्ञा-पालन – ये सब गुण व्यक्तिगत या राष्ट्रगत उन्नति के लिए एकमात्र उपाय हैं। और ये गुण हम लोगों में हैं ही नहीं।

तुम जैसा काम कर रहे हो वैसा ही करते जाओ। परन्तु अपने विद्याभ्यास पर विशेष दृष्टि रखना। य... (यज्ञेश्वर) बाबू ने एक हिन्दी पत्रिका मुझे भेजी है, उसमें अलवर के पण्डित रा... ने मेरे शिकागो-व्याख्यान का अनुवाद किया है। दोनों सज्जनों को मेरी विशेष कृतज्ञता और धन्यवाद ज्ञापित करना।

अब तुम्हारे लिए कुछ लिखता हूँ। राजपुताने में एक केन्द्र खोलने की विशेष चेष्टा करना। वह **जयपुर** या **अजमेर** जैसी किसी सदर जगह में होना चाहिए। इसके बाद **अलवर**, **खेतड़ी** आदि शहरों में उसकी शाखाएँ स्थापित करना। सबके साथ मिलना, किसी से विरोध की जरूरत नहीं। पण्डित ना... (नारायणदास) जी को मेरा प्रेमालिंगन देना, वे बड़े उद्यमी हैं, भविष्य में विशेष कार्यक्षम होंगे। मा... साहब और ...जी से भी मेरा यथोचित प्रीति-सम्भाषण कहना। धर्ममण्डली नाम की क्या एक संस्था **अजमेर** में कायम हुई है? वह क्या है, विशेष रूप से लिखना। य... बाबू लिखते हैं कि उन्होंने मुझे पत्र लिखे, पर वे मुझे अभी तक नहीं मिले।... मठ आदि कलकत्ते में क्या बनाओगे? वाराणसी ही ऐसे कार्यों के लिये उपयुक्त स्थान है। ऐसे मेरे अनेक विचार हैं – पर उनके लिए रुपयों की जरूरत है। धीरे-धीरे तुम्हें सब मालूम हो जायेगा। तुमने अखबारों में

---

७. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ४, पृ. ३११-१२

देखा होगा कि इंग्लैंड में कार्य अपनी नींव जमा रहा है। यहाँ सभी काम धीरे-धीरे होते हैं। परन्तु अंग्रेज पट्ठे एक बार जिस काम में हाथ डालते हैं, उसे फिर छोड़ते नहीं। अमेरिकावासी बड़े फुर्तीले तो हैं, पर प्राय: फूस की आग की तरह होते हैं। रामकृष्णदेव अवतार हैं – आदि आम जनता में प्रचारित मत करना। अलवर में मेरे कई चेले हैं, उनकी खबर रखना।... महाशक्ति तुममें आयेगी। डरो मत। पवित्र होओ, विश्वासी होओ और आज्ञापालक होओ।

बाल-विवाह के विरुद्ध शिक्षा देना। बाल-विवाह का समर्थन किसी भी शास्त्र में नहीं है। पर छोटी-छोटी लड़कियों के ब्याह के विरुद्ध अभी कुछ मत कहना। लड़कों का ब्याह रोक दोगे, तो लड़कियों का ब्याह भी स्वयं ही रुक जायेगा। लड़की तो फिर लड़की से ब्याही नहीं जायेगी! लाहौर आर्यसमाज के मंत्री को लिखना कि **अच्युतानन्द** नाम के जो संन्यासी उनके साथ रहते थे, वे अब कहाँ हैं? उनकी विशेष खोज करना। ... डर क्या है? प्रेमपूर्वक तुम्हारा,

विवेकानन्द[८]

राजस्थान में अपने कार्य की प्रगति देखने की स्वामीजी की इतनी तीव्र इच्छा थी कि १८९४ में उन्होंने आलासिंगा को लिखा था कि वे भारत लौटने की योजना बना रहे हैं और मुम्बई से सीधे राजपुताना जायेंगे। फिर १८९५ में रामकृष्णानन्दजी के नाम एक पत्र में वे बंगाल के लोगों के ठंडे उत्साह पर नाराजगी व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि मठ को राजपुताना में स्थापित करना होगा।

कविता द्वारा राजा को दिलासा

यह कविता कब तथा किस सन्दर्भ में लिखी गयी थी, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। चेन्नै से निकलनेवाली अंग्रेजी 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका के १६ जनवरी १८९८ अंक में यह पहली बार प्रकाशित हुई थी, अत: यह इसके काफी पूर्व ही लिखी गयी होगी। यह १८९५-९६ में ही दो सन्दर्भों में रचित हो सकती है – एक तो यह कि खेतड़ी की रियासत का अधिकांश भाग जयपुर राज्य के अधीन पड़ता था और विभिन्न बहानों से जयपुर राजा के द्वारा उन पर तरह-तरह से दबाव डालने के प्रयास किये जाते थे। इससे अजीतसिंह बीच-बीच में थोड़ी कठिनाई में पड़ जाते थे। ऐसा ही संकेत मिलता है १८९५ (अन्त में) स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित स्वामीजी के एक पत्र में – "गुणनिधि (अच्युतानन्द) के बारे में ही मैंने लिखा था। **हरिसिंह** आदि को मेरा आन्तरिक प्रेमाशीर्वाद देना। किसी प्रकार के विवाद-कलह में न फँसना। **'खेतड़ी' के राजासाहब को दबाने की सामर्थ्य किसमें है? माँ जगदम्बा उनकी सहायक हैं।**"[९]

८. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ४, पृ. ३६०-६१

संवत् १९५२ (१८९५-९६ ई.) में बीमार हो जाने पर अपने चिकित्सक आगरे के सिविल सर्जन डॉक्टर ल्युकिस की सलाह पर राजाजी ने जलवायु-परिवर्तन हेतु अयोध्या, लखनऊ, मथुरा, वृन्दावन, बड़ौदा, मुम्बई, हैदराबाद, महाबलेश्वर आदि स्थानों की यात्रा की थी।[१०] सम्भव है कि करीब वर्ष भर चली अस्वस्थता के उन निराशा भरे दिनों में ढाढ़स बँधाने के लिये ही स्वामीजी ने उक्त कविता लिखकर महाराजा को भेजी हो। 'Hold on yet a while Brave Heart' शीर्षक उक्त अंग्रेजी कविता का सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा कृत हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है –

धीरज रखो तनिक और हे वीर हृदय !

भले ही तुम्हारा सूर्य बादलों से ढक जाये,
आकाश उदास दिखायी दे,
फिर भी धैर्य धरो कुछ हे वीर हृदय,
तुम्हारी विजय अवश्यम्भावी है।

शीत के पहले ही ग्रीष्म आ गया,
लहर का दबाव ही उसे उभारता है
धूप-छाँव का खेल चलने दो
और अटल रहो, वीर बनो !

जीवन में कर्तव्य कठोर हैं,
सुखों के पंख लग गये हैं,
मंजिल दूर, धुँधली सी झिलमिलाती है,
फिर भी अन्धकार को चीरते हुए बढ़ जाओ,
अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ !

कोई कृति खो नहीं सकती और
न कोई संघर्ष व्यर्थ जाएगा,
भले ही आशाएँ क्षीण हो जायँ
और शक्तियाँ जवाब दे दें।
हे वीरात्मन, तुम्हारे उत्तराधिकारी अवश्य जन्मेंगे
और कोई सत्कर्म निष्फल न होगा !

यद्यपि भले और ज्ञानवान कम ही मिलेंगे,
किन्तु, जीवन की बागडोर उन्हीं के हाथों में होगी,
यह भीड़ सही बातें देर से समझती है,
तो भी चिन्ता न करो, मार्ग-प्रदर्शन करते जाओ।

तुम्हारा साथ वे देंगे, जो दूरदर्शी हैं,
तुम्हारे साथ शक्तियों का स्वामी है,
आशीषों की वर्षा होगी तुम पर,
ओ महात्मन्, तुम्हारा सर्वमंगल हो !

❖ (क्रमश:) ❖

९. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ४, पृ. ३१४
१०. आदर्श नरेश, पृ. १५६-५७
११. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड १०, पृ. १८८

शिवजी भैया

रामेश्वर टांटिया

(लेखक १५ वर्ष की अवस्था में जीवन-संघर्ष के लिये जन्मभूमि त्यागकर कलकत्ता आये। कोलकाता की एक अंग्रेजी फर्म जे. टॉमस कम्पनी में साधारण हैसियत से काम शुरू किया। बाद में क्रमश: उन्नति करत हुए मुम्बई, असम और कोलकाता में विभिन्न उद्योग स्थापित किये। १९५७ ई. में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और १९६६ ई. तक संसद सदस्य रहे। पाँच बार कांग्रेस पार्टी के कोषाध्यक्ष भी हुए। १९६८-७० ई. में आप कानपुर के मेयर थे। आप सुप्रसिद्ध 'ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन' के प्रबन्ध निदेशक भी थे। आपने १९५०, १९६१, १९६४ ई. में तीन बार विदेश-यात्राएँ की। व्यवसायी तथा उद्योगपति होते हुये भी अत्यन्त सहृदय, साहित्यानुरागी तथा समाजसेवी थे। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। प्रस्तुत है 'भूले न भुलाए' पुस्तक के कुछ अंश। – सं.)

कुछ इस प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जिनसे मिलते-जुलते लोग हर काल, समाज और देश में मिल जाते हैं। मैं शरत् बाबू का उपन्यास 'विराज बहू' पढ़ रहा था। उसमें नीलाम्बर चक्रवर्ती के प्रसंग में मुझे राजस्थान के शिवजी रामजी की याद आ गयी। अगर यह पुस्तक उस अंचल के किसी लेखक द्वारा लिखी गयी होती, तो जानकार लोगों को नीलाम्बर के चरित्र में शिवजी रामजी का भ्रम हो जाता।

इस कथा के नायक का जन्म आज से सौ वर्ष पहले शेखावाटी के किसी कस्बे में हुआ था। पिता का देहान्त बहुत पहले ही हो गया था। साधारण-सी सम्पन्न गृहस्थी थी। घर में माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, परन्तु बहुत ही बुद्धिमती और चतुर थी। उन्होंने पति के मरने के बाद दोनों पुत्रों को अच्छी शिक्षा दी। घर-गृहस्थी को भी सम्हाल कर रक्खा। दोनों भाइयों में आपस में इतना प्रेम था कि लोग इनको राम-लक्ष्मण की जोड़ी की उपमा देते। उस समय की रीति के अनुसार दोनों के विवाह बचपन में ही हो गये थे।

एक दिन बड़े भाई रामकिशन ने माता के सामने मुम्बई जाकर काम करने का विचार रक्खा। यद्यपि उसकी आयु उस समय केवल बीस वर्ष की ही थी, कभी परदेश जाने का अवसर भी नहीं मिला था, यात्राएँ बीहड़ तथा कष्टमय थीं, परन्तु पिता का साया सिर पर नहीं था और जो कुछ पास में था वह पिछले वर्षों में खर्च हो गया था, इसलिये माता ने भारी मन से अनुमति दे दी।

वह छोटे भाई शिवजी राम और पत्नी को वृद्धा माता की सेवा के लिये घर पर छोड़कर मुम्बई के लिये विदा हो गया। शिवजी राम के जिम्में कुछ काम तो था नहीं, इसलिये भाई के छोटे बच्चे को खिलाता रहता और गाँव में कभी साधु-सन्त आते, तो उनकी सेवा में सबसे पहले पहुँच जाता।

तीन मील दूर जंगल में एक कुँआ था। सुबह जल्दी उठकर नित्य-कर्म के लिये वहीं चला जाता। साथ में चार-पाँच सेर अनाज ले जाता और वहीं पक्षियों को चुगा देता। वहाँ से लौटकर अपनी दो गायों को दाना-पानी खिलाता, उनके ठाण की सफाई आदि का सारा काम करता। फिर स्नान करने के बाद नियम से भगवान राम के मन्दिर में जाता। वे उनके कुल-देवता थे।

गाँव में रहकर उसने वैद्यक और नाड़ी-परीक्षा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिये बचे हुये समय में गरीब रोगियों की चिकित्सा करता और बहुतों को दवा के सिवाय पथ्य भी अपने पास से दे देता था। इन सबके सिवाय उसने एक नियम यह भी बना रखा था कि गाँव में किसी की भी मृत्यु हो, तो वहाँ जरूर पहुँच जाता और चलावे के सारे कामों में पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता। चाहे बैसाख-जेठ की गर्मी हो या पूस-माघ की सर्दी की रात, ऐसा कभी नहीं हुआ कि शिवजी राम ऐसे किसी मौके पर न पहुँचा हो।

उन दिनों छुआछूत का बहुत विचार था, परन्तु उसकी मान्यता थी कि मृत्यु के बाद व्यक्ति की जोत भगवान की जोत में मिल जाती है। मृतक की कोई जाति नहीं होती। इसलिये वह गरीब हरिजनों के यहाँ भी ऐसे मौकों पर पहुँच जाता। अपने गाँव और आस-पास के देहात में सब लोग उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।

माता धार्मिक भावना की थी और उसकी प्रेरणा से ही शिवजी राम की इन कामों में रुचि हुई थी। परन्तु पत्नी और भाभी सर्वदा नाराज रहती थीं। वे कहती – "सब ऊल-जलूल काम तुम्हारे ही जिम्मे पड़े हैं!"

कभी-कभी गाँव के संडे-मुसंडे भी बीमारी या कष्टों का बहाना बनाकर ठग ले जाते। शिवजी राम के पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बड़ा भाई हर तीन-चार वर्षों के बाद देश में आता और दो-तीन महीने रहकर फिर मुम्बई चला जाता। माता का देहान्त होने के बाद वह पत्नी और पुत्र को भी अपने साथ मुम्बई ले गया। शिवजी राम अब गाँव में मात्र अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रह गये।

१९०१ ई. में मुम्बई में जो महामारी फैली, उसमें बड़े भाई रामकिशन की मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा पत्नी और चौदह वर्ष का पुत्र रामदयाल दोनों रोते-बिलखते चाचा के पास अपने गाँव आ गये। अब सारा भार उसी पर आ पड़ा।

उसने मुम्बई न जाकर अपने कस्बे में ही गल्ले की दूकान कर ली और भतीजे को साथ रखकर काम सिखाने लगा।

दुकानदारी में जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिये, उसका शिवजी राम में सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले जाते, परन्तु भुगतान नहीं करते। वे जानते थे, शिवजी राम कभी कचहरी में जाकर अदायगी के लिये नालिश नहीं करेगा। आखिर, दो-तीन वर्ष नुकसान उठाने के बाद दुकान उठा देनी पड़ी। इसी बीच भतीजा रामदयाल अपने पिता की तरह काफी होशियार हो गया और मुम्बई चला गया।

वहाँ के व्यापारियों से रामदयाल के पिता का अच्छा सम्पर्क था और उसकी ईमानदारी की साख भी थी। मुम्बई जाकर उसने कॉटन एक्सचेंज में अपने पिता के नाम के पुराने फर्म को फिर चालू किया। संयोग ऐसा बना कि थोड़े वर्षों में ही काम जम गया और उसके पास लाखों रुपये हो गये।

रामदयाल ने कई बार चाचा को भी मुम्बई आ जाने के लिये लिखा, परन्तु गाँव में इतने तरह के काम रहते कि शिवजी राम मुम्बई न जा सका। द्वारका-धाम की यात्रा के समय उसको सपरिवार मुम्बई में ठहरने का मौका मिला। वहाँ अपने भतीजे का वैभव और सुनाम देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। रामदयाल और उसकी पत्नी ने उन्हें सदा के लिये वहीं रहने का आग्रह किया, परन्तु उसका मन इस व्यस्त महानगरी में नहीं लगा और थोड़े दिनों बाद ही वह वापस राजस्थान लौट आया। अब वह शिवजी भैया की जगह सेठ शिवजी राम हो गया। दान-धर्म की मात्रा बढ़ गयी, परन्तु प्रौढ़ हो गया था, इसलिये पहले जितनी भाग-दौड़ नहीं कर पाता था।

इतने गुणों के बावजूद उसमें एक कमी रही कि उसने घर की समस्याओं की तरफ कभी ध्यान नहीं दिया था। दोनों लड़कियों का विवाह तो अच्छे घरों में हो गया, परन्तु इकलौता लड़का लिख-पढ़ नहीं पाया।

कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनको शिवजी राम के यश और मान-बड़ाई से ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने मुम्बई में रामदयाल के कान भरने शुरू किये कि इतनी मेहनत करके कमाते तुम हो और वाह-वाही तथा सेठाई सब तुम्हारे चाचाजी की होती है। उसकी स्त्री तो पहले से ही भरी-बैठी थी, मगर पति के डर से चुप थी। उसके बहुत कहने-सुनने पर कई वर्षों बाद रामदयाल स्त्री-बच्चों सहित मुम्बई से अपने गाँव आया। लोगों ने जो बात कहीं थी, वह वास्तव में सही निकली। चारों ओर सेठ शिवजी राम की प्रशंसा हो रही थी। वे जिस तरफ निकल जाते, लोग खड़े होकर जुहार (नमस्कार) – राम-राम करते। सुबह-शाम सैकड़ों अभ्यागतों के लिये अन्न-क्षेत्र चालू था। सारे दिन जरूरतमन्दों की भीड़ लगी रहती थी। मौका देखकर रामदयाल ने चाचा से बँटवारे के लिये कहा। सुनकर एक बार तो शिवजी राम को बड़ा कष्ट हुआ, पर तुरन्त ही वे सम्हल कर बोले – "बेटा, कमाया हुआ तो सब तुम्हारा ही है। मैंने तो उम्र भर केवल खर्च ही किया, इसलिये जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमें क्या कहना है!"

एक कागज पर सम्पत्ति का ब्यौरा लिखा गया। बड़ी हवेली और मुम्बई का फर्म रामदयाल ने अपने लिये रखना चाहा। नगद रुपये का दो बराबार का हिस्सा हुआ। अपना मकान छोड़कर जाने में बहुत क्लेश होता है, परन्तु शिवजी राम के चेहरे पर शिकन तक नहीं आयी। उसने कहा – "तुम्हारी मान-बड़ाई और इज्जत के लिये बड़ी हवेली में रहना ही सर्वथा उचित भी है। मैं कल ही छोटी हवेली में चला जाऊँगा। अब रही नकद रूपये की बात तो मुझे अन्दाज भी नहीं था कि अपने पास इतने सारे रुपये हैं। मैं भला इन्हें कहाँ सम्हाल पाऊँगा? देवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयों को तुम अपने पास ही रहने दो। खर्च के लिये जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।" अन्तिम वाक्य कहते हुये उसकी आँखें जरूर गीली हो गयी थीं। रामदयाल सोचने लगा कि न चाचाजी ने हिसाब की जाँच की, न हवेली छोड़ने में आपत्ति की और न मुम्बई के फर्म की साख (गुडविल) के बदले में ही कुछ चाहा, बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास ही छोड़ रहे हैं।

उसे अपने-आप पर बड़ी ग्लानि और लज्जा हो आयी। वह रोता हुआ चाचाजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। कहने लगा, "लोगों के बहकावे में आकर मैंने यह नासमझी की। मुझे किसी प्रकार का भी बँटवारा नहीं करना है। बड़े भाग्य से आप सरीखे चाचा मिलते हैं। पिताजी तो बचपन में ही छोड़कर चले गये। आपने यदि पढ़ा-लिखा कर मुझे योग्य नहीं बनाया होता, तो भला आज हमारा यह वैभव कहाँ से हो पाता?"

कुछ दिनों बाद मुम्बई लौटते समय वह अपने चचेरे छोटे भाई देवदत्त को भी साथ ले गया। वहाँ जाकर देवदत्त की पुरानी आदतें छूट गयीं और वह भी काम में लग गया।

मैंने जब शिवजी रामजी को देखा था उस समय वे अस्सी वर्ष के वृद्ध थे। उन्होंने संयम और त्याग का जीवन बिताया था, इसलिये उस समय भी उनका स्वास्थ्य अच्छा था। दान-धर्म के तौर-तरीके बदल गये थे। सदावर्त और ब्राह्मण-भोजन के साथ-साथ उनके द्वारा स्थापित स्कूल, अस्पताल और जच्चा-घर भी जनता की सेवा में लगे हुए थे।

❑❑❑

क्रोध पर विजय (२)

स्वामी बुधानन्द

(हमें अपने जीवन में प्राय: ही अपने तथा दूसरों के क्रोध का सामना करना पड़ता है, परन्तु हम नहीं जानते कि क्रोध क्या है, इसकी उत्पत्ति कैसे और कहाँ होती है, और उस पर कैसे नियंत्रण किया जाय। इसी विषय को लेकर रामकृष्ण संघ के एक विद्वान् संन्यासी स्वामी बुधानन्द जी ने १९८२ ई. में रामकृष्ण मिशन के दिल्ली केन्द्र में अंग्रेजी में एक व्याख्यान-माला प्रस्तुत की थी। बाद में ये व्याख्यान मद्रास मठ के आंग्ल मासिक 'वेदान्त-केसरी' में धारावाहिक रूप से और अन्तत: एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए। आधुनिक जीवन में उनकी उपादेयता को देखते हुए 'विवेक-ज्योति' में हम उसका हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत कर रहे हैं। – सं.)

क्रोध पर नियंत्रण के लिये एक विद्वान् की सलाह

क्रोध पर विजय विषयक श्रीकृष्ण के उपदेशों का अध्ययन करने के पूर्व, हम कुछ दार्शनिकों, विचारकों, विद्वानों तथा कवियों के कुछ विवेकपूर्ण तथा घरेलू शिक्षाओं को देखेंगे।

वेदान्त के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'पंचदशी' के रचयिता स्वामी विद्यारण्य अपने अन्य ग्रन्थ 'जीवन्मुक्ति-विवेक' में क्रोध नियंत्रित करने के लिये निम्नलिखित उपाय बताते हैं –

''क्रोध के दो प्रकार हैं – किसी अन्य पर तुम्हारा क्रोध और तुम्हारे ऊपर किसी अन्य का क्रोध। जब तुम्हें दूसरों पर क्रोध आता है, तो अपने मन को सम्बोधित करके कहो, 'रे मन, यदि तू अपने को हानि पहुँचानेवालों पर क्रोध ही करना चाहता है, तो फिर तू क्रोध पर ही क्रोध क्यों नहीं करता? क्योंकि वही तो तुम्हें सर्वाधिक हानि पहुँचाता है। वह तेरे जीवन के इच्छित आदर्शों, धर्मपथ, धन, सुख तथा मुक्ति की प्राप्ति में बाधक होता है। क्रोध जब तुझ पर सवार हो जाता है, तब तू जीवित रहते हुए भी नरक में निवास करता है। इसलिये क्रोध से बढ़कर तेरा दूसरा कोई शत्रु नहीं है।' ''

इस सत्य के तात्पर्य पर बारम्बार विचार करना चाहिये। तुम्हें क्रोध पर ही क्रोधित होना चाहिये। इसी से शान्ति तथा ज्ञान की उपलब्धि होती है।

जब क्रोध हम पर हावी हो जाता है और हमें उत्तेजित करके अपने कुफल के रूप में किसी अन्य व्यक्ति का अपमान या हिंसा करने को प्रेरित करने में सफल हो जाता है, तो उसी क्षण वह क्रुद्ध व्यक्ति के सद्गुणों, सुनाम तथा धन का नाश कर देता है। क्रोध यदि उस सीमा तक न भी पहुँचे, तो भी वह व्यक्ति के मन को झुलसा तो देता ही है।

अत: लोक तथा परलोक में इतनी अधिक क्षति पहुँचाने की सामर्थ्य रखनेवाला यह क्रोध किस प्रकार भले व्यक्ति के मन में स्थान बना सकता है? इस प्रकार की चिन्तन-प्रक्रिया भी क्रोध पर विजय पाने के सर्वोत्तम उपायों में से एक है।

''दूसरे लोगों के अपने प्रति क्रोधित होने पर भी, तुम्हें कदापि नहीं सोचना चाहिये, 'मैंने तो कुछ भी गलत नहीं किया, तो फिर क्यों ये लोग मुझ जैसे निर्दोष व्यक्ति पर ऐसे नाराज हो जाते हैं?' तुम वस्तुत: निर्दोष नहीं हो। क्योंकि, अब तक यदि हम जीवन तथा मृत्यु के बन्धन से मुक्त नहीं हो सके हैं और आत्मा की अनुभूति नहीं कर सके हैं, तो क्या यह एक महान् अपराध नहीं है? ईश्वर की उपलब्धि ही व्यक्ति को वास्तविक रूप से निर्दोष बनाती है। अत: जब तक तुम्हें ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक तुम अपने को निर्दोष कैसे मान सकते हो?

''दूसरे के क्रोध के शिकार होने पर उत्तेजित होने से बचने का एक अन्य उपाय है – अपने ऊपर क्रोध करनेवालों को अपना हितैषी मानना और उनकी सेवाओं के लिये उनके प्रति कृतज्ञता का भाव रखना, क्योंकि हमारे ऊपर नाराज होकर वे हमारे लिये हमारे दोष प्रकट कर देते हैं और इस प्रकार हमारी अनासक्ति को सुदृढ़ बनाते हैं। हमें अपनी इस सेवा का लाभ पहुँचाने के लिये वे अपनी मन:शान्ति तक की बलि चढ़ा देते हैं। अतएव हमें उनके प्रति और भी अधिक आभारी होना चाहिये।''

अब हम कुछ उपयोगी सुझावों के लिये कुछ पाश्चात्य विद्वानों की सहायता लेते हैं –

मरकुस आरेलियस अपने 'मेडीटेशन' (ध्यान) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं – ''जब तक तुम बहुत गुस्से में हो, तो मन-ही-मन सोचो – यह मानव जीवन कितना क्षणिक् है ! हमें सोचना चाहिये कि जिन कारणों से हम क्रोधित हुए हैं, इस क्रोध का परिणाम उसकी अपेक्षा और भी कितना दु:खद होगा। क्रोध की उत्तेजना के समय तुम्हारे समक्ष यह सत्य उपस्थित हो कि पौरुष, उत्तेजना से विचलित हो जाने में नहीं है; बल्कि विनम्रता तथा कोमलता अधिक मानवीय गुण होने के कारण कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।''

एपिक्टेटस कहते हैं – ''जब कभी तुम पर क्रोध सवार हो, तो तुम यह निश्चित जानो कि यह न केवल वर्तमान दोष है, अपितु तुमने एक आदत भी बढ़ा ली है और मानो आग में ईंधन डाला है।... यदि तुम क्रोधी स्वभाव के नहीं होना चाहते, तो इस आदत को प्रश्रय मत दो। इसे बढ़ने का कोई मौका मत दो। पहले मौन धारण करो और फिर उन

दिनों की याद करो, जब तुम नाराज नहीं हुए थे - 'पहले मैं हर रोज क्रोध करता था; फिर एक-एक दिन बाद करता था और उसके बाद हर तीसरे या चौथे दिन।' और यदि तुम पूरा महीना बिना क्रोध किये बिता सको, तो भगवान को कृतज्ञता-पूर्वक धन्यवाद दो।

सेनेका का कहना है - "क्रोध का सर्वोत्तम इलाज है – विलम्ब करना।" क्रोधित होने पर कुछ बोलने के पूर्व १० तक गिनती गिनो, क्रोध बहुत हो तो १०० तक गिनो। यही उनके व्यावहारिक उपदेशों का सार है। इसका उद्देश्य यह है कि क्रोध के मार्ग में गतिरोध खड़ा किया जाय।

३. श्रीकृष्ण के उपदेश

श्रीकृष्ण के उपदेशों में हम क्रोध पर विजय पाने की एक पूरी प्रणाली देख पाते हैं। यह ठोस मनोविज्ञान पर आधारित है और इसमें ऐसे उपायों का समावेश है, जिनका अपने धर्म-सम्प्रदाय से निरपेक्ष भाव से हर कोई अभ्यास कर सकता है। वे कहते हैं - "इस महापेटू तथा महापापी को ही संसार में तुम अपना परम शत्रु समझो।" (गीता, ३/३७)

भ्रान्ति तथा अज्ञान की एक विशेषता यह है कि हम इसके कारण अपने शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझ बैठते हैं। अत: श्रीकृष्ण हमें बताते हैं कि हम क्रोध को अपना प्रत्यक्ष शत्रु समझें और उसके साथ तदनुसार व्यवहार करें। अन्यथा क्रोध हमारी स्वीकृति तथा उदार सहायता से हम पर हावी हो जाता है। चूँकि हम किसी-न-किसी बहाने हमेशा नाराज हो जाया करते हैं, अत: अन्तरंगता या सहवासिता के कारण क्रोध हमारा मित्र बन बैठा है। जब कभी हम क्रोध के अधीन होते हैं, तो हमारा मन भ्रान्त हो जाता है। और भ्रान्ति की अवस्था में हम जो कुछ भी करते हैं, वह आज नहीं तो कल हमें चोट पहुँचायेगा ही। भ्रान्ति सोच को प्रभावित करती है, स्मृति को विकृत करती है और हम पहले के सीखे हुए अपने जीवन-सम्बन्धी पाठों को भूल जाते हैं। तब हम लोग विपरीत भावना से प्रेरित एक अज्ञानी व्यक्ति के समान आचरण करते हैं। हम विवेक के पाठों को भूलकर अपनी बुद्धि की संरक्षक सेवा से वंचित हो जाते हैं और ऐसे कार्य करने को दौड़ पड़ते हैं, जो हमारे लिये हानिकर सिद्ध होते हैं। इस प्रकार क्रोध एक प्रभावी आन्तरिक विध्वंसक बन जाता है।

क्रोध से प्रेरित शब्द तथा क्रियाएँ बड़ी प्रबल होती हैं, क्योंकि वे सीधे हमारी ऊर्जा के केन्द्र से जुड़ी होती हैं। हमारे लिये यह याद रखना जरूरी है कि मनुष्य की मनो-शारीरिक प्रणाली से जुड़ा ऊर्जा का कोई भी केन्द्र काफी महत्त्व रखता है। क्रोध को ऐसी विधि से नियंत्रण में लाना होगा, जिससे ऊर्जा-संसाधनों को कोई क्षति न पहुँच सके। अग्नि की मूलभूत ऊर्जा यद्यपि हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी है, तो भी हम अपने घरों में अग्नि को उन्मुक्त विचरण की छूट नहीं दे सकते।

अत: क्रोध पर विजय पाने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के ऊर्जा-स्रोत को हानि पहुँचाये बिना ही, उसके विध्वंसात्मक पहलू से उसके ऊर्जा-केन्द्र को अलग किया जाय। व्यक्ति में आध्यात्मिक रूपान्तरण लाने के लिये उसकी संरचना में निहित उसकी ऊर्जा के प्रत्येक कण की आवश्यकता है। हिन्दू चिन्तन में, व्यक्ति में पुनरुज्जीवन लाने के उपाय के रूप में क्लीवता को कभी उपयुक्त नहीं माना गया है।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि श्रीकृष्ण गीता (१६/२१) में एक ही साँस में 'काम-क्रोध-लोभ' – को नरक के तीन द्वार बताते हैं। ये तीनों ही भाव रजोगुण से उत्पन्न होते हैं और मानसिक रूप से एक दूसरे से जुड़े हैं। वे और भी कहते हैं – "रजोगुण से उत्पन्न होनेवाली यह कामना और क्रोध महापेटू तथा महापापी हैं और संसार में इन्हीं को तुम अपना परम शत्रु समझो।" (वही, ३/३७)। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्री शंकराचार्य अपने भाष्य में कहते हैं –

काम एष सर्वलोकशत्रुः यन्निमित्ता सर्वानर्थप्राप्तिः प्राणिनाम्, स एष कामः प्रतिहतः केनचित् क्रोधत्वेन परिणमते। अतः क्रोध अपि एष एव। रजोगुणसमुद्भवो रजोगुणात् समुद्भवो यस्य स कामो रजोगुणसमुद्भवो रजोगुणस्य वा समुद्भवः। कामो हि उद्भूतो रजः प्रवर्तयन् पुरुषं प्रवर्तयति। तृष्णया हि अहं कारित इति दुःखितानां रजःकार्ये सेवादौ प्रवृत्तानां प्रलापः श्रूयते। महाशनो महद् अशनम् अस्य इति महाशनः अत एव महापाप्मा। कामेन हि प्रेरितो जन्तुः पापं करोति। अतो विद्धि एनं कामम् इह संसारे वैरिणम् – "कामना या तृष्णा ही सम्पूर्ण विश्व की शत्रु है, जिसके द्वारा प्राणियों को सारे अनर्थों की प्राप्ति होती है। उसी कामना में किसी कारणवश बाधा आ जाने से वह क्रोध में परिणत हो जाती है। तब कामना क्रोध का रूप धारण कर लेती है। यह रजोगुण से उत्पन्न होती है, क्योंकि जब कामना उत्पन्न होती है तो वह व्यक्ति में रजोगुण जगाकर कर्म में प्रवृत्त करती है। हम प्राय: ही रजोगुण से प्रभावित लोगों का प्रलाप सुनते हैं, 'तृष्णा ही मुझसे यह कराती है।'... यह अत्यन्त पापात्मा है, क्योंकि कामनाओं से प्रेरित हुआ मनुष्य ही पाप-कर्मों में लिप्त होता है। अत: इस संसार में कामना को ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु समझो।"

इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कामना मनुष्य की अन्य निकृष्टतर भावनाओं से जुड़ी है और उससे अलग से नहीं निपटा जा सकता।

एक बार एक भक्त ने श्रीरामकृष्ण के एक शिष्य स्वामी तुरीयानन्द से कहा – "कृपया मेरे मन को कामनाओं से मुक्त कर दीजिये।" तुरीयानन्द जी का उत्तर बड़ा ही शिक्षाप्रद है।

वे बोले – "अपने शरीर को नहीं, आत्मा को देखो। मन को आत्मा पर एकाग्र करने का अभ्यास करो। निरन्तर भोग्य विषयों का चिन्तन करने पर व्यक्ति की उनसे आसक्ति हो जाती है। आसक्ति हो जाने पर व्यक्ति को उसे प्राप्त करने की इच्छा होती है और इच्छा से क्रोध उत्पन्न होता है।"

कामनाओं के घनीभूत रूप को ही स्वामी तुरीयानन्द क्रोध कहते हैं। इससे व्यक्ति अपनी विचार शक्ति को पूरी तौर से खो बैठता है। केवल इच्छा मात्र ही मन पर पूरी तौर से आधिपत्य नहीं जमा पाती। उनकी सलाह है – "कभी क्षणभंगुर वस्तुओं का चिन्तन मत करो। इस उपाय से तुम आसक्तियों से बच सकोगे।" वे श्रीराम की यह उक्ति उद्धृत करते हैं – "जिह्वा तथा उपस्थ पर नियंत्रण रखकर कहीं भी निवास किया जा सकता है।" इसके बाद वे बताते हैं कि काम और क्रोध ही व्यक्ति की सारी समस्याओं की जड़ हैं।

कामनाओं के नियंत्रण के विषय में श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन में भी एक रोचक घटना प्राप्त होती है –

"चैतन्यदेव जब केशव भारती के कुटीर में संन्यास की दीक्षा लेने गये, तो भारतीजी बोले, 'अभी-अभी तो तुम्हारा यौवन खिला है और तुम्हारी सुन्दरता भी ऐसी अनुपम है। तुम्हें संन्यास देने का भला कौन साहस करेगा?' श्री चैतन्य ने उत्तर दिया, 'महाराज, आप संन्यास देने के पूर्व प्रार्थी की परीक्षा लिया करते हैं न! उसके बाद यदि आप मुझे योग्य समझें, तो आप स्वाभाविक रूप से ही मुझे भी दीक्षा प्रदान करेंगे। अत: कृपया आप परीक्षा करके देखें कि क्या मैं इसके योग्य हूँ!' भारतीजी ने चैतन्यदेव से कहा, 'अपनी जीभ बाहर निकालो।' दीक्षार्थी के निकले हुए जीभ पर उन्होंने थोड़ी-सी चीनी रख दी। चीनी जरा भी नम हुए बिना पूर्ववत् सूखी ही रह गयी। उसके बाद वह वायु के झकोरों से उड़कर बिखर गयी। इसके बाद उन्हें चैतन्यदेव के अन्य किसी भी कामना की परीक्षा लेने की जरूरत नहीं रह गयी।"

श्रीमद्भागवत की शिक्षा है – **जितं सर्वं जिते रसे** – जिह्वा का लोभ नियंत्रण में आ जाने पर बाकी सब नियंत्रण में आ जाता है।" इसके आगे तुरीयानन्द जी सलाह देते हैं –

"पूरी गीता में बारम्बार कहा गया है, 'अत: हे भरतश्रेष्ठ, पहले तुम इन्द्रियों को वश में करके इस वैरी पापाचारी तथा ज्ञान-विज्ञान के नाशक कामना का त्याग करो।

"इन्द्रियों में से यदि एक भी अनियंत्रित रह जाय, तो व्यक्ति की सारी तपस्या, सारी साधना उसी प्रकार निरर्थक हो जाती है, जैसे घड़े में यदि एक भी छिद्र हो, तो उसी से बहकर सारा पानी बाहर निकल जाता है। श्रीरामकृष्ण खेत की सिंचाई करनेवाले एक किसान का उदाहरण देते हैं, जिसमें मेड़ के एक छेद से सारा पानी बह गया और खेत में पानी का एक बूँद तक नहीं पहुँची। ईश्वर का दर्शन हो जाने के बाद विषय-भोगों की कामना साधक को छोड़ जाती है।

"कठोर प्रयासों के द्वारा भी इन्द्रियों को नियंत्रण में नहीं लाया जा सकता। ईश्वर की अनुभूति हो जाने के बाद इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण हो जाता है। परन्तु प्रारम्भ में व्यक्ति को इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संघर्ष करना पड़ता है।"

स्वामी तुरीयानन्द के उपरोक्त उपदेशों में वस्तुत: गीता के पूर्वोद्धृत श्लोक की सरलतम व्याख्या निहित है।

बहुमुखी प्रयास की आवश्यकता

उपरोक्त सलाहों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम क्रोध को काम, लोभ आदि से अलग करके उस पर विजय नहीं पा सकते। आधुनिक शब्दावली में कहें तो इसके लिये एक बहुमुखी उपाय का आश्रय लेना आवश्यक है। जब हम अन्य उत्तेजनाओं को नियंत्रित करने की चुनौती को स्वीकार कर लेते हैं, तब क्रोध को नियंत्रित करने का कार्य अधिक प्रभावी ढंग से सम्पन्न होता है। कोई ऐसा सोच सकता है कि हमने तो एक समस्या हाथ में ली कि 'क्रोध को कैसे नियंत्रित करें' – परन्तु अब हमें कुछ अन्य समस्याओं से ही निपटने को कहा जा रहा है। लेकिन किसी समस्या के वर्तमान रूप के प्रति उदासीनता दिखाकर और उसके केवल आंशिक समझ को ही पकड़े रहकर, हम उस समस्या के समाधान को कठिन ही बनाते हैं। समस्या को उसके सही पृष्ठभूमि में समझ लेने पर हम कहीं अधिक व्यापक आत्म-सुधार की प्रक्रिया आरम्भ करते हैं। जब हम समस्या की जड़ को समझ लेते हैं, तब यह आत्म-रूपान्तरण सम्पन्न करके एक पूर्ण नवजीवन की उपलब्धि की जा सकती है।

मानव तथा उसके स्वभाव पर गीता के विचार

मनुष्य के स्वभाव में अभिव्यक्त होनेवाले गुणों की कार्यविधि के विषय में एक स्पष्ट धारणा प्राप्त कर लेने से हम अपनी आलोच्य समस्या का एक सर्वांगीण समाधान पा सकेंगे। उत्तेजनाएँ रजोगुण से उत्पन्न होती हैं, जो हमारी मनो-शारीरिक स्वभाव के त्रिविध पक्षों में से एक है। गीता के चौदहवें अध्याय में इस विषय पर विस्तार से चर्चा हुई है, जिसे संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है –

ईश्वर की शक्ति के द्वारा पुरुष और प्रकृति के संयोग से सभी सृष्ट जीवों की उत्पत्ति होती है। ईश्वर की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, क्योंकि वे ही पृथ्वी के सभी जीवों के मूल उद्गम तथा उसमें बसनेवाली आत्मा हैं। आत्मा (पुरुष) शरीर तथा भौतिक पदार्थों के संसर्ग से संसार में आबद्ध हो जाती है – पुरुष चेतना का द्योतक है और प्रकृति जड़ तथा तमोमय जगत् की द्योतक है। प्रकृति सत्व, रजस् तथा तमस् – इन तीन गुणों से मिलकर बनी है। चंचलता

का मूल रजस् प्रकृति का सक्रिय तत्त्व है; तमस् जड़ता का तत्त्व और सत्व शान्ति, प्रशान्ति तथा समन्वय का तत्त्व है। सापेक्ष संसार गुणों के राज्य के अन्तर्गत आता है। स्वाधीनता गुणों के परे है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में ये तीनों गुण उपस्थित रहते हैं, तथापि इनमें से कोई एक गुण बाकी दो पर हावी हो जाता है और (व्यक्ति में) एक विशेष स्वभाव के प्राबल्य की सूचना देता है, जिसके कारण हम कहते हैं – वह एक शान्त व्यक्ति है, या एक चंचल व्यक्ति है, आदि, आदि। श्रीकृष्ण (१४/१०-१३) आगे कहते हैं –

"हे भारत, रजस् तथा तमस् को अभिभूत करके सत्त्वगुण (प्रबल होता है), सत्त्व तथा तमस् को दबाकर रजोगुण और सत्त्व तथा रजस् को दबाकर तमोगुण प्रबल होता है।

"जब इस शरीर के सभी द्वार (इन्द्रियाँ) बुद्धि (ज्ञान) के प्रकाश से पूर्ण हों, तब सत्त्व का प्राबल्य समझना चाहिए।

"हे अर्जुन, लोभ, कर्म में प्रवृत्ति (लगाव), उद्यम, अशान्ति और (भोगों की) स्पृहा (कामना) – ये रजोगुण का प्राबल्य होने पर वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

"हे कुरुपुत्र, तमोगुण का प्राबल्य होने पर अन्धकार (अज्ञान), निष्क्रियता, प्रमाद तथा मोह (भ्रम) उत्पन्न होते हैं।"

आचार्य शंकर 'विवेक-चूड़ामणि' ग्रन्थ में इन तीन गुणों की क्रियाओं को और भी विस्तार से समझाते हैं –

"काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, दुर्भाव, अहंकार, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि – ये घोर लक्षण रजोगुण के हैं, जिनसे मनुष्य के मन में सारी सांसारिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव रजोगुण ही बन्धन का कारण है। (११२)

"अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा, प्रमाद (भ्रान्ति), मूर्खता आदि तमोगुण के लक्षण हैं। इनसे बँधा हुआ व्यक्ति कुछ भी नहीं समझता, अपितु निद्रामग्न अथवा लकड़ी के खम्भे के समान जड़ रहता है। (११६)

"प्रसन्नता, स्वरूप-बोध, परम शान्ति, तृप्ति, अति हर्ष, परमात्मा में निष्ठा; जिनके द्वारा निरन्तर आनन्द-रस का बोध होता रहता है – ये विशुद्ध सत्त्वगुण के लक्षण हैं। (११९)

क्रोध की चिकित्सा

विश्लेषण करने पर यह देखने में आता है कि किसी व्यक्ति के स्वभाव, आचरण तथा व्यवहार में क्रोध का प्राबल्य इस बात का सूचक है कि रजोगुण उसका प्रमुख गुण हो गया है और सत्त्वगुण तथा तमोगुण प्रभावी रूप से दबे हुए हैं। जब तक रजोगुण उसके स्वभाव पर प्रभुत्व बनाये रखता है, तब तक वह क्रोध पर विजय नहीं पा सकता। क्रोध की जड़ से तथा स्थायी चिकित्सा के लिये व्यक्ति को अपने स्वभाव में सत्त्व का प्राबल्य लाने का कोई उपाय ढूँढ़ना होगा, क्योंकि केवल तभी वह निश्चित रूप से क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकता है।

जब श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'सत्त्वगुण रजस् तथा तमस् को अभिभूत करके अपना प्राबल्य स्थापित करता है', तो क्या उनका तात्पर्य यह है कि ऐसा स्वचालित रूप से ही हो जाता है। यदि ऐसा ही हो, तो फिर ऐसा कब होगा? यदि हम अनन्त काल में निवास कर रहे हों, तो अनन्त काल में सत्त्वगुण का प्राबल्य अपने आप ही स्थापित होगा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – "अन्त में हर व्यक्ति मुक्त हो जायेगा।"

यद्यपि अनन्त काल में, कभी भी निश्चित रूप से मुक्ति पाने का विचार भी उत्साहजनक है, तो भी व्यक्ति को अपनी वर्तमान समस्याओं से निपटने के लिये, और भी अधिक व्यावहारिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है। प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ चलते हुए हम पूरे मामले को प्रकृति के हाथों में छोड़ सकते हैं, परन्तु हमारे सामने चुनौती यह है कि हम किस प्रकार अपने जन्म से ही प्राप्त अपने स्वभाव में रजोगुण तथा तमोगुण के ऊपर सत्त्वगुण का प्रभुत्व स्थापित करें।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं – "काम, क्रोध तथा तमोगुण के बुरे प्रभावों से सत्त्वगुण हमारी रक्षा करता है। सत्त्व संसार का बन्धन ढीला कर देता है।" भगवान हंस-रूप में अवतार लेकर ज्ञान-विषयक उपदेश देते हुए व्यक्ति के स्वभाव में सत्त्वगुण का प्राबल्य लाने के उपायों पर सविस्तार चर्चा करते है। श्रीमद्भागवत (११/१३/१-६) में लिखा है –

"सत्त्व, रजस् और तमस् – प्रकृति के गुण हैं, आत्मा के नहीं। सत्त्व का विकास करके बाकी दोनों को दबा देना चाहिये और उसके बाद सत्त्व के द्वारा ही सत्त्व पर भी विजय प्राप्त कर लेना चाहिये। सत्त्व के प्राबल्य से मेरे (ईश्वर) प्रति भक्ति में वृद्धि होती है। तब सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करने से सत्त्वगुण उत्तरोत्तर और भी सुदृढ़ होता जाता है। फिर सत्त्व को बढ़ानेवाले भक्तिरूपी सर्वोच्च धर्म के द्वारा रजस् तथा तमस् का नाश हो जाता है। उनके जाने से, उनका फलरूप अधर्म भी शीघ्र मिट जाता है।

"व्यक्ति द्वारा अध्ययन किये जानेवाले शास्त्र, उपयोग किया जानेवाला जल, मेलजोल रखे जानेवाले लोग, निवास करने का स्थान, उसका प्रिय समय, उसके द्वारा सम्पन्न किये जानेवाले कर्म, उसे प्राप्त हुई दीक्षा, उसके ध्यान का विषय, उसे प्राप्त हुआ मंत्र, उसके शुद्धीकरण की पद्धति – ये उसके गुणों को प्रभावित करते हैं। ज्ञानी लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह सात्त्विक है; जिसकी निन्दा करते हैं, वह तामसिक है; और जिसकी उपेक्षा करते हैं, वह राजसिक है। व्यक्ति को सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करना चाहिये, क्योंकि उससे धर्म तथा ज्ञान में वृद्धि होती है और उससे चित्त शुद्ध होकर आत्मतत्त्व की अनुभूति हो जाती है।"

❖ (क्रमशः) ❖
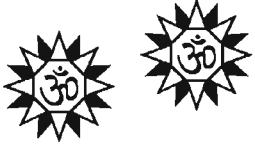
पातञ्जल-योगसूत्र-व्याख्या (८)
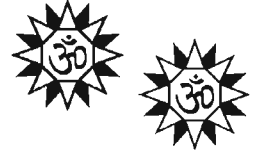
स्वामी प्रेमेशानन्द

(माँ श्री सारदा देवी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी ने १९६२ ई. के फरवरी माह में अपनी अस्वस्थता के दौरान वाराणसी में अपने सेवक को पातञ्जल योगसूत्र पढ़ाया था। इनके पाठों को सेवक एक नोटबुक में लिख लेते थे। बाद में सेवक – स्वामी सुहितानन्द जी ने उन पाठों को सुसम्पादित कर एक बँगला ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ पातञ्जल योग जैसे गूढ़ विषय पर इस सहज-सरल व्याख्या का हिन्दी अनुवाद रायपुर आश्रम के स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

एते जाति-देश काल-समयानवच्छिन्नाः
सार्वभौमा महाव्रतम् ।।३१।।

ये साधन जाति-देश-काल और समय से निरपेक्ष एवं सार्वभौमिक हैं, अतः सार्वभौमिक महाव्रत के रूप में इनका पालन करना चाहिये।

शौच-सन्तोष-तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि
नियमाः ।।३२।।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्रणिधान को नियम कहते हैं।

व्याख्या – पराविद्या का भारत में पूर्णतः विस्तार हुआ था। जगत और जीवन के सम्बन्ध में जो अलौकिक तत्त्व शास्त्र में उल्लिखित हैं, वैदिक धर्म के नष्टप्राय हो जाने से अभी ठीक अरबी-उपन्यास की अलौकिक कहानियों की तरह हो गये हैं। जो लोग प्राचीन शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन करते हैं, वे लोग भी दूसरी अपराविद्या की तरह ही, पराविद्या की भी व्याख्या करते रहते हैं। पण्डित-शास्त्रविदों के लेख पढ़ने से या उनलोगों की बातें सुनकर ऐसा लगता है – जैसे हमलोग भूगोल पढ़ते हैं, मानचित्र देखते हैं या यात्रावृत्तान्त पढ़ते हैं, वैसे ही आध्यात्म विज्ञान के विषय में भी पण्डित लोग ऐसी व्याख्या करते हैं। साधकों के साथ वार्तालाप करने पर भी लगता है कि वे लोग इस विद्या की चर्चा कोई जीविका-निर्वाह के साधन के रूप में, कोई समय बिताने के लिये मनोरंजन के रूप में या कोई दूसरे के पास व्याख्या करके गौरवशाली बनने हेतु करते हैं।

इस संसार में प्रत्येक विद्या ही, गुरुपरम्परा से उसकी साधना नहीं करने से, वह नष्ट हो जाती है। सम्प्रदाय ही विद्या की रक्षा का एकमात्र उपाय है। संसार में सभी ज्ञान, सम्प्रदाय के द्वारा ही सुरक्षित रहते हैं। भारतवर्ष में बहुत दिनों से ब्रह्मविद्या का सम्प्रदाय प्रायः लुप्त हो गया है। श्री शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि प्रमुख महान पुरुषों के प्रयास से वह बाहर से केवल 'अस्तिमात्र' (केवल विद्यमान है, किन्तु उपयोग में नहीं है) रूप में समाज में देखने को मिलता है, किन्तु अभी कोई भी सम्प्रदाय सुगठित सुनियन्त्रित और सुसंचालित नहीं है।

किसी भी विद्या का प्रचार करने के लिये उसके आचार-प्रचार और संरक्षण की आवश्यकता का बोध आचार्यों में होना चाहिये। सभी विद्यायें एक जन्म में कभी-भी विकसित नहीं होतीं। क्या जिस किसी व्यक्ति को संगीत-विद्या की शिक्षा दी जा सकती है? पूर्वजन्मों में जिन लोगों ने संगीत-विद्या का अभ्यास किया है, उसी के कण्ठ से संगीत का स्वर अच्छा लगता है, उसमें ही संगीत की योग्यता अभिव्यक्त होती है। यह नियम सभी विद्याओं पर लागू होता है। किन्तु सम्प्रति मानव-जीवन की रहस्य-विद्या सम्पूर्णतः अज्ञात है, ऐसा मानकर जन्म-जन्मान्तरों से अध्यात्म-साधना के लिये उपयोगी, समाज-गठन की बात आकाश-कुसुम जैसी हो गयी है। भगवान श्रीरामकृष्णदेव ने पराविद्या की समस्त विद्याओं का स्वयं अनुष्ठान कर, उसकी साधना करके दिखा दिया है। स्वामी विवेकानन्द ने उसे सभी लोगों के लिये सहज बोध होने के लिये सरलता से प्रचार किया है। यदि इस विद्या का चिन्तन-मनन करते-करते मानव योनि में शुभ संस्कार लेकर कोई जन्म ले, तो उसके लिये साधना करना पहले की अपेक्षा अधिक सहज होगा।

सभी विद्याओं के दो दृष्टिकोण हैं – theory and practice सिद्धान्त और प्रयोग, व्यवहार या जिसे हम लोग साध्य और साधन कहते हैं। अध्यात्मविद्या के साध्य से सम्बन्धित सभी तत्त्वों की व्याख्या उपनिषद, भगवद्गीता आदि ग्रन्थों में सम्पूर्ण रूप से की गई है। ब्रह्मविद्या की साधन-प्रणाली की व्याख्या अनेकों शास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होते-होते, महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणीत 'योग-सूत्र' में पूर्णतः परिपक्व हुई है। इस ग्रन्थ में लिखित प्रणाली की सहायता से मानव का जीवन निश्चित रूप से पूर्णतः सफल होगा। इस ग्रन्थ में जीवन के परे, जीवन के अतीत प्रदेश में उपस्थिति होने की अर्थात् मुक्ति-प्राप्त करने की प्रणाली का सुस्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है। विश्व में ज्ञान के सम्बन्ध में अनेकों प्रकार के विचार प्रचारित हुये हैं, किन्तु इस अष्टांग योगविद्या के समान अद्भुत विलक्षण विद्या, इस संसार में कभी-भी प्रचारित नहीं हुई।

योगशास्त्र में साधन-प्रणाली को आठ-भागों में विभक्त कर, ठीक वैज्ञानिक-पद्धति से ही समझाया गया है। मनुष्य में स्थित पशुता को दूर करने के लिये अष्टांगयोग की प्रथम साधना '**यम**' है। इसका तात्पर्य है – पशु अपने जीवन की

रक्षा के लिये किसी भी कार्य से विराम नहीं लेता अर्थात् वह सब कुछ करता है, लेकिन मनुष्य विवेक द्वारा इस पशुता से मुक्त हो सकता है। इस पशुता से, इस पशु-संस्कार से अपने को मुक्त करना ही यम है। **अहिंसा** – अपनी रक्षा करने हेतु, दूसरे को अनिष्ट करने की प्रवृत्ति को मन से पूर्णत: निकाल देना। **सत्य** – जीवित रहने के लिये समाज में सबके साथ परस्पर पूर्ण सौहार्द की आवश्यकता है। सत्य में प्रतिष्ठित नहीं होने पर आपस में पूर्ण विश्वास और सौहार्द-सद्भाव कभी-भी सम्भव नहीं हो सकता। **अस्तेय** – अपनी सुविधा हेतु, किसी दूसरे की वस्तु को अन्याय पूर्वक ग्रहण करने से लोभ में वृद्धि होती है। एवं आपस में भारी सन्देह का भाव बना रहता है। परस्पर शंका होने लगती है। जो दूसरे की वस्तु अन्याय पूर्वक हड़प लेता है, उसके मन में यह चोर-भाव उसकी सत्य-रक्षा में सर्वदा शंका पैदा करता है। ऐसे चंचल-मन से आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होना सम्भव नहीं है। मथुर बाबू के परिवार के लिये दूसरे के द्वारा शाग लेने की घटना एवं श्रीरामकृष्ण का आचरण प्रसंगत: उल्लेखनीय है। **ब्रह्मचर्य** – यह एक महान व्रत है। व्यक्ति जितने प्रकार के व्रत का पालन करता है, उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि किसी भी कार्य को करने के लिये सबसे पहले आत्मशक्ति के अपव्यय को रोकना ही होगा। वीर्य-धारण नहीं करने से, प्राणशक्ति के क्षय होने के कारण सांसारिक कार्य में भी सफलता नहीं मिल सकती। वीर्य-धारण करने के लिये मन से सब प्रकार की उत्तेजना के कारण को दूर करना पड़ता है। इसीलिये इसे 'Conservation of Energy' शक्ति-संरक्षण कहते हैं। **अपरिग्रह** – योग-साधना तो दूर की बात है, सभ्य समाज में रहने के लिये भी दूसरे की किसी वस्तु को ऐसे ग्रहण नहीं करते हैं। यदि कोई व्यक्ति, किसी सज्जन व्यक्ति के लड़के को कोई वस्तु उपहार में देता है और यदि वह उसे ग्रहण कर ले, तो किसी भी तरह उपहारदाता को वैसे ही या उससे भी अधिक सामग्री देकर वह शान्ति प्राप्त करता है। अपरिग्रह के सम्बन्ध में प्राचीन समाज में अत्यन्त कठोर नियम था। शास्त्र जिन्हें दान-ग्रहण करने का अधिकारी बताते हैं, वे ब्राह्मण भी शास्त्र-कथित स्थान या व्यक्ति को छोड़कर किसी दूसरे से कभी भी कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते थे। श्रीरामकृष्ण के पिता क्षुदिराम चट्टोपाध्याय, अपरिग्रह के सम्बन्ध में कितने सचेत थे, इसका प्रमाण 'श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग' में मिलता है। हमारे देश में प्राचीन धारणा थी कि अपने जीवन का सम्पूर्ण दायित्व स्वयं ही लेना होगा। दूसरे की सहायता लेने पर सहायक (सहायता करने वाले) के जीवन का दायित्व दान-ग्रहणकर्त्ता (सहायता लेने वाले) के ऊपर आ जाता है, अर्थात् उसके पाप का दुख-भोग करना पड़ता है। बहुत दिनों से देश के पराधीन रहने के कारण आत्मसम्मान के बोध से रहित, दुख-दरिद्रता से पीड़ित भारतवासी अपरिग्रह के सम्बन्ध में पूर्णत: असावधान हो गये हैं। जिसे जहाँ भी सुयोग मिलता है, वह दूसरे की सम्पत्ति से अपनी इच्छापूर्ति करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करता। भारतवासियों की आध्यात्मिक उन्नति में यह एक बहुत बड़ी बाधा है।

मानव में मानवता के विकास हेतु उपरोक्त पाँचों महाव्रत सभी देश-काल में निश्चित ही पालन करने योग्य हैं, ऐसा महर्षि पतंजलि ने निर्देश दिया है।

योग-साधना के अन्य पाँच व्रतों का उल्लेख किया जा रहा है, जिसका साधक को पालन करना चाहिये।

पहला व्रत है शौच – योग-साधना का एक अति आवश्यक अंग है शरीर-मन को पवित्र रखना। जिन वस्तुओं के साथ पवित्रता का भाव संयुक्त है, सन्ध्या-वन्दन करने के समय वे वस्तुयें कितनी सहायक हैं, हम सभी उसे जानते हैं – अर्थात् बहुत सहायक होती हैं। स्नान करके स्वच्छ धोया हुआ वस्त्र पहनने से मन बहुत प्रफुल्लित हो जाता है। किसी देव-मन्दिर में प्रवेश करते ही पवित्रता का भाव जाग्रत होने लगता है। भगवान के मन्दिर में या पूजा कक्ष में, गंगाजल, सुगन्धित धूप, पुष्प इत्यादि मन्दिर या पूजा-कक्ष के वातावरण को पवित्र करके रखता है। पवित्र वस्तु के सम्पर्क में आने मात्र से ही स्वाभाविक रूप से ही मन में पवित्रता का भाव प्रबल हो उठता है। हमलोगों का स्वरूप सबसे पवित्रम वस्तु है, इसलिये हमारा शरीर और मन जितना ही शुद्धता का बोध करेगा, उतना ही भगवान की सन्निकटता का, ईश्वर के सामीप्य का बोध होगा।

पवित्रता को सभी देशों में सभ्यता का एक अंग माना गया है। पाश्चात्य देश में कहते हैं – "Cleanliness is next to godliness." ईश्वर के बाद यदि कुछ श्रेष्ठ है, तो पवित्रता ही है। स्वच्छ रहने के लिये तीक्ष्ण-दृष्टि और सदा सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि यह आध्यात्मिक साधना में विशेष सहायक है। पवित्रता की साधना 'शुचिवाई' (शुचिताई) नहीं है। पवित्रता के भाव को ठीक से समझकर, अपने अन्दर और बाहर उसका अभ्यास करना पड़ता है, उसकी साधना करनी पड़ती है। मस्तिष्क विकृत हो जाने पर वह सम्भव नहीं होता। सत्त्वगुण का विकास नहीं होने पर, पवित्रता क्या है, यह समझ में नहीं आता है। आजकल जो आधुनिक सुगन्धित धूप जलाते हैं, कपड़ों में सेन्ट लगाते हैं – यह सब रजोगुण का कार्य है। यद्यपि यह तमोगुण से श्रेष्ठ है, किन्तु सत्त्वगुणी के लिये यह हेय है, गौड़ है।

दूसरा व्रत 'सन्तोष' है – सभी परिस्थितियों में मन का प्रशान्त रहना ही 'सन्तोष' का तात्पर्य है। अनेकों प्रकार की

काम्य वस्तुओं की लालसा में मन को उद्‌विग्न रखने से मन की शान्ति का ह्रास, क्षय होता है। अभ्युदय (भौतिक समृद्धि) के पथ पर जिसकी जितनी क्षमता है, उतना ही उत्साह के साथ उसे चलना होगा एवं क्षमतानुसार जितना हो सकता है, उतने से ही उसे सन्तुष्ट रहना होगा। मात्र इसी शरीर में ही तो हमारा जीवन सीमित नहीं है। मैं अनन्त बार शरीर धारण कर अपने जीवन का चरम विकास कर सकूँगा, इस प्रकार सोचकर बड़े उत्साह के साथ अपने कर्तव्य का पालन करते हुये, मन को स्थिर, शान्त रखकर बड़ी शान्ति से जीवन-यापन किया जा सकता है। इस विचार को Plain living and high thinking – 'सादा जीवन, उच्च विचार' कहते हैं। इससे आत्मविकास बाधित नहीं होता, बल्कि साधक का मस्तिष्क ठण्डा, शान्त रहने से, धीर कदमों से विकास के निश्चित पथ पर अग्रसर होता है।

भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के संन्यास के प्रभाव ने सम्पूर्ण भारत को ग्रसित कर लिया है। 'सन्तोष' की यह साधना अभ्युदय का विरोधी नहीं है, इसे न समझकर 'जैसे-तैसे जीवित रहने से ही हुआ' – इस भाव में विगत कई शताब्दियों तक भारतवासियों ने जीवन व्यतीत किया है। जो जिस अवस्था में है, उसी अवस्था में पड़े रहना ही हमारे देश का धर्म हो गया था। इसका कारण कुसंस्कार और अशिक्षा होने पर भी, ऐसा होने का मुख्य कारण हजार वर्षों की पराधीनता थी। हमलोग विगत हजार वर्षों तक इतनी खराब अवस्था में थे कि किसी भी तरह प्राण-रक्षा के अतिरिक्त अन्य किसी विषय की ओर देखने का अवसर ही नहीं था।

एक दिन एक हास्यकर घटना हुई थी। उसका यहाँ उल्लेख असमीचीन नहीं होगा। सन् १९११ में हम दो मित्र एक वृद्ध शिक्षित सज्जन के यहाँ अतिथि हुये थे। उनके साथ देश की अवस्था के सम्बन्ध में अनेकों प्रकार की चर्चा हो रही थी। उन्होंने सभी परिस्थितियों में सन्तोष का भाव दिखाते हुये, तत्कालीन प्रचलित एक किंवदन्ति सुनाया था "बेगुनपोड़ा कि मन्द। पेट भरिले की आनन्द।" अर्थात् 'तला बैगन क्या खराब है? पेट भरने पर कितना सुख मिलता है।' इस बात को सुनकर आधुनिक विचारवादी हमारा मित्र तेज स्वर में बोल उठा – "तब तो महाशय, आप 'छाई (राख) क्यों नहीं खाते हैं, उससे भी तो पेट भर जाता है?"

सन् १९०५ के बंग-भंग आन्दोलन के पहले तक बांगलादेश में यही एक नारा था – "हिलो-डुलो मत चुपचाप बैठे रहो।"

इसी को लोग सन्तोष का अभ्यास के रूप में व्याख्या करते थे। जबकि सन्तोष सत्त्वगुण की विशेष प्रकाशित अवस्था है। शरीर-मन में सन्तोष-भाव का विकास होने से, जीवन में एक प्रशान्ति का भाव प्रकाशित होता है, उसे ही सन्तोष कहते हैं। भगवान के भक्त इसे समझ सकते हैं – मैं जिन परमेश्वर की सन्तान हूँ, वे इस संसार के स्वामी हैं, इसलिये हमारे लिये 'भिखारी' बनकर 'कंगाल' बनकर छटपटाना अशोभनीय है, यह ठीक नहीं है। सत्पथ पर चलने पर हमारे पिता भगवान ही हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देंगे, सभी कामनाओं को मिटा देंगे। यही सहज स्वाभाविक सन्तोष है।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।।३३ ।।

योग में बाधक विचारों के उत्पन्न होने पर, उसके विपरीत विचारों का चिन्तन करना चाहिये।

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वका। मृदुमध्यादिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।।३४ ।।

योग के बाधक हिंसा आदि कर्म स्वयं के द्वारा किये हुये, दूसरों से करवाये हुये या अनुमोदित होते हैं। इनके कारण लोभ, क्रोध और मोह हैं। इनमें भी कोई अल्प, मध्यम या अधिक मात्रा में होने पर भी, इन कर्मों का परिणाम अनन्त अज्ञान और अनन्त दुख होता है। ऐसा विचार करना ही प्रतिपक्ष भावना है।

व्याख्या – यम, नियम की साधना करते समय, कहीं कोई शंका होने पर, बड़े मनोयोग पूर्वक विचार करके देखना होगा। इन व्रतों के पालन में छोटी-सी गलती होने पर भी भयंकर पतन की सम्भावना रहती है और दुःख-कष्ट तो निश्चित ही होता है। इन साधनाओं के करते समय कष्ट या असुविधा सहन करने पर भी इससे जीवन सुखमय हो जायेगा, थोड़ा-सा विचार करने पर ही उसे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।।३५ ।।

जिसके हृदय में अहिंसा का भाव विद्यमान है, अर्थात् जो साधक अहिंसा में प्रतिष्ठित है, उसके सान्निध्य में, सम्पर्क में आने पर, दूसरे का बैर-भाव भी नष्ट हो जाता है। अर्थात् दूसरे प्राणी भी अपनी स्वाभाविक शत्रुता, हिंसा-वृत्ति को छोड़ देते हैं।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।।३६ ।।

जिन साधक के हृदय में सत्य प्रतिष्ठित है या जो साधक सत्य में प्रतिष्ठित हैं, उनके द्वारा कर्म नहीं करने पर भी, वे अपने या दूसरे के लिये कर्मफल की प्राप्ति कर सकते हैं।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।।३७ ।।

अस्तेय में प्रतिष्ठित होने पर योगी के पास सब प्रकार के रत्न, धन-सम्पत्ति आकर उपस्थित हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।।३८ ।।

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर वीर्य की प्राप्ति होती है।

❖ (क्रमशः) ❖

माँ की स्मृति

जितेन्द्र कुमार साहा

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

उस समय (१९१९ में) मैं २१ वर्ष का युवक था। अचानक एक दिन मुझे अपने मित्र मन्मथ राय का पत्र मिला – "चले आओ, माँ के पास जाना है।" उस समय माँ कोआलपाड़ा के जगदम्बा आश्रम में थीं।

चैत का महीना था। कड़ाके की धूप में बैलगाड़ी से चलकर दोपहर में जब हम चार मित्र कोआलपाड़ा आश्रम के पास जाकर खड़े हुये, तब आश्रम के अध्यक्ष स्वामी केशवानन्द ने पूछा, "आप लोग क्या पूर्व बंगाल के रहने वाले हैं?" हमने कहा, "हाँ।" महाराज बोले, "माँ ने सुबह कहा था, पूर्व बंगाल के मेरे कुछ लड़के आयेंगे।"

माँ के साथ हमारा पहले से कोई परिचय नहीं था। हम लोग पहले से सूचना देकर भी नहीं गये थे। तो भी माँ जान गयी थीं कि हम आ रहे हैं। जैसे बहुत दिनों बाद परदेश से घर लौटे सन्तान के लिये माँ आकुल हो जाती है, ठीक वैसे ही हम लोगों के आने की बात सुनकर माँ ने ममतापूर्वक केशवानन्द महाराज से कहा था – "वे लोग बड़ा कष्ट उठा कर आये हैं। उनके लिये थोड़ा दूध, चीनी और सूजी ला दो। मैं भोजन बना दूँगी।" उसी भीषण गर्मी में चूल्हे की आग को नजरन्दाज कर माँ ने स्वयं अपने हाथों से हमारे लिये पीठा तथा खीर बनाकर आश्रम में भिजवा दिया था। माँ पास के ही जगदम्बा आश्रम में थीं। उस दिन माँ का दर्शन नहीं हुआ। केशवानन्द जी बोले, "कल सुबह दर्शन होगा।" हम लोग दीक्षा लेने की उम्मीद लेकर आये हैं, यह सुनकर केशवानन्दजी बोले, "आज ही कई लड़के वापस लौट गये हैं। माँ ने – खेत तैयार नहीं है – कहकर उन्हें दीक्षा नहीं दिया।" यह बात सुनकर हम लोग थोड़े चिन्तित हो गये। माँ के शिष्य शौर्येन्द्रनाथ मजूमदार वहीं उपस्थित थे। उन्होंने आश्वस्त किया – "माँ को पुकारो, सब ठीक हो जायेगा।"

सारी रात नींद नहीं आयी। एक ही चिन्ता – सुबह माँ क्या कहेंगी? कृपा होगी या नहीं होगी? पक्षी बोलने लगे। महाराज ने आकर पुकारा – "आप लोग उठ जाइये। स्नान करके तैयार रहिये। नहीं तो, जब माँ बुलायेंगी तब स्नान के लिये समय नहीं रहेगा।" महाराज के कथनानुसार हम लोग आश्रम से लगे तालाब में नहाकर, शुद्ध मन से उस परम क्षण की, उस परम वांछित पुकार की प्रतीक्षा करने लगे।

आखिरकार सारी दुविधा – सारे द्वन्दों का अन्त हुआ। वह पुकार आयी। उस समय माँ ठाकुर-घर में पूजा समाप्त करके अपने आसन पर बैठी हुई थीं, मानो साक्षात् भक्ति देह धारण करके मिट्टी के मन्दिर में बैठी हों। प्रणाम करते ही माँ ने मुझसे पूछा – "कौन-सा मंत्र अच्छा लगता है?"

मैंने कहा – "माँ, मैं नहीं जानता। मैं आपके पास आया हूँ – जानता हूँ कि आप जो मंत्र देंगी, मेरा उसी से कल्याण होगा, उसी से मेरा मंगल होगा।"

माँ बोलीं – तुम्हारे कुल का मंत्र – वैष्णव है। वैष्णव-मंत्र ही लो।" दीक्षा हो गयी। दीक्षा लेने से पहले मैं अपना कुलमंत्र नहीं जानता था। परम तृप्ति के साथ दो-एक दिन बाद मैं घर लौट आया। घर में सुना कि हम लोगों का कुल -मंत्र वैष्णव-मंत्र है। मैं समझ गया – माँ अन्तर्यामिनी हैं।

एक व्यक्ति ने कहा था कि तुम्हारे हाथ की ऊँगलियाँ शुद्ध जप के उपयुक्त नहीं हैं। इसलिये इष्टमंत्र का जप करने में बड़ी हिचकिचाहट का बोध होने लगा। सोचा – यदि माँ अनुमति दे, तो माले में इष्टमंत्र का जप करूँगा। माँ से प्रार्थना करते हुये मैंने पत्र लिखा कि माला में जप किया जा सकता है या नहीं? और यदि किया जा सकता है, तो मैं किस तरह के माले से इष्टमंत्र का जप करूँ?

माँ, दूर तथा पास के अपने सभी शिष्य-सन्तानों के मन की बात जानती थीं और जान सकती थीं। पूर्णिमा की रात थी। पृथ्वी का वक्षस्थल चाँदनी के आलोक से नहाया हुआ था। मैं गहरी निद्रा में मग्न था। माँ ने स्वप्न में दर्शन दिया। उनकी दिव्य-मूर्ति मेरे समक्ष तुलसी की माला हाथ में लिये खड़ी थीं। उस ज्योति की झलक से मेरी नींद खुल गयी। स्वप्न टूट गया। रात बीत चुकी थी। अगले दिन केशवानन्द जी का पत्र आया – माँ ने मेरे लिये तुलसी की माला निर्धारित किया है।

एक बार मन में आया – मैं अपने घर पर जगद्धात्री पूजा करूँगा। माँ उस समय तक देहत्याग कर चुकी थीं। एक रात देखा – वे गाँव के काली-मन्दिर के सामने बैठी हुई हैं। मन्दिर सहसा प्रकाश से भर उठा। मैं मन्दिर की माँ काली की मूर्ति को देख रहा था। क्षण मात्र में यह कालीमूर्ति अदृश्य हो गयी – मेरे सामने सिंहवाहिनी जगद्धात्री मूर्ति विराजित थी। उसके बाद वह मूर्ति भी विलीन हो गयी। तब देखा माँ की मूर्ति। उसके बाद वही कालीमूर्ति, फिर जगद्धात्री मूर्ति। मैं समझ गया – जो जगद्धात्री हैं, वे ही काली हैं और वे ही माँ सारदा हैं।*

❖ **(क्रमशः)** ❖

* उद्बोधन, वर्ष ९७, अंक ४, वैशाख १४०२, पृ. १८४

गुरु की आवश्यकता

स्वामी रामकृष्णानन्द

(श्रीरामकृष्ण के एक प्रमुख शिष्य द्वारा लिखित यह लेख (Self-Knowledge-I) योग के यथार्थ स्वरूप पर सुन्दर प्रकाश डालता है। अद्वैत आश्रम से प्रकाशित The Message of our Master नामक पुस्तक से इसका हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी विदेहात्मानन्द ने। – सं.)

मनुष्य की आत्मा निराकार है और इस कारण असीम भी है; क्योंकि आकार उसी वस्तु की होती है, जो सभी ओर से सीमाबद्ध है; और इस कारण जो निराकार है, वह असीम भी होगा। यह चेतन भी है और इस कारण वह असीम चैतन्य है; इस कारण वह सर्वज्ञ भी है। यद्यपि इससे यह युक्तिसंगत निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य अपने स्वभाव से ही सर्वज्ञ तथा असीम है, तथापि वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि वह आबद्ध है। इसका क्या कारण है? ऐसा इसलिये है कि वह शरीर का आत्मा के साथ घालमेल कर बैठता है, वह शरीरी होना चाहता है। वह सत्य और असत्य के बीच विवेक नहीं करता।

शरीर का मोह छोड़ो

सत्य क्या है? यहाँ एक कुर्सी रखी है। एक समय इसका (कुर्सी के रूप में) अस्तित्व नहीं था और फिर एक ऐसा समय भी आयेगा, जब इसका (कुर्सी के रूप में) अस्तित्व नहीं रहेगा। वैसे जिन पदार्थों से यह कुर्सी बनी है, वे इसके निर्माण के पूर्व भी अस्तित्व में थीं और भविष्य में कुर्सी के नष्ट हो जाने के बाद भी किसी-न-किसी रूप में आगे भी रहेंगी। यह सत्य है कि पदार्थ अविनाशी है। परन्तु हम तो एक विशेष वस्तु – कुर्सी की बात कर रहे हैं। वह वस्तु नाशवान है। इसलिये याद रखो – जब भी हम किसी वस्तु को असत्य कहते हैं, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस वस्तु का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में पहले नहीं था या भविष्य में नहीं रहेगा, बल्कि यह है कि वह उस विशेष वस्तु के रूप में सदा से नहीं रही है और भविष्य में भी नहीं रहेगी। इसलिये हमारे द्वारा दृश्यमान यह जगत् असत्य है, क्योंकि यह निरन्तर परिवर्तनशील है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थूल या बृहत् जगत् असत्य है और सूक्ष्म जगत् भी असत्य है, क्योंकि सूक्ष्म जगत् स्थूल जगत् का ही एक अंश है। जिस शरीर को व्यक्ति अपनी सच्ची आत्मा समझता है, वह वस्तुत: असत्य है। इसका जन्म हुआ है और इसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। इसके बावजूद हम इसी को दुनिया की एकमात्र आकांक्षित वस्तु मानकर, एकमात्र सत्य वस्तु मानकर इसी में आसक्त रहते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है? यद्यपि मनुष्य प्रतिदिन अपने चारों ओर हजारों लोगों को मरते हुए देखता है, तो भी वह आशा करता है कि वह किसी प्रकार एक अपवाद सिद्ध होगा और चिर काल तक जीवित रहेगा। यहाँ तक कि एक कष्ट झेलता हुआ कुष्ठ रोगी भी मरना नहीं चाहता। शरीर के प्रति ऐसी कठोर आसक्ति क्यों? इसलिये कि मनुष्य सुखी होना चाहता है और शरीर के साथ तादात्म्य का बोध करके वह सोचता है कि जब तक उसका शरीर रहेगा, तभी तक वह सुखी रह सकेगा।

जीव माया से कैसे बँधा है

पक्षियों को पकड़ने की प्रक्रिया इस प्रकार है – बाँस के छोटे-छोटे अनेक टुकड़ों को एक रस्सी में पिरो दिया जाता है और उसके दोनों छोरों को दूर-दूर स्थित दो वृक्षों की ऊँची डालियों से बाँध दिया जाता है। चिड़ियाँ बाँस की नलियों से बनी इस रस्सी को देखती हैं और उसे सुन्दर स्थान समझकर दल-की-दल आकर उस पर बैठ जाती हैं। परन्तु वे ज्योंही बैठती हैं, त्योंही बाँस की नलियाँ नीचे की ओर घूम जाती हैं और उनका सिर नीचे की ओर झूल जाता है। इससे चिड़ियों के मन में मृत्यु का ऐसा भय समा जाता है कि वे उसी को पकड़े लटकी रहती हैं और जिन पंखों के उपयोग से वे बहेलिये की झोली में जाने से बच सकती हैं, उनका उपयोग करना भूल जाती हैं। जैसे ये मूर्ख चिड़ियाँ अपनी प्राणरक्षा के एकमात्र उपाय रूप अपने पंखों के अस्तित्व की बात भूलकर बाँस की नलियों को पकड़े रहती हैं और शिकारी की पकड़ में आ जाते हैं, वैसे ही मनुष्य भी अपनी मूर्खता के कारण सोचता है कि शरीर ही उसकी एकमात्र आशा है और यदि शरीर चला जाय तो उसके सारे सुखों का अन्त हो जायेगा। वह भूल जाता है कि उसका शरीर ही उसकी वास्तविक स्वरूप नहीं है और यदि वह अपना शरीर छोड़ दे, तो वह सर्वोच्च आनन्द का रसास्वादन करेगा।

दो ही कारण मनुष्य को अज्ञान में आबद्ध रखते हैं – सुखों की आकांक्षा और शरीर से आसक्ति अर्थात् यह विश्वास कि केवल शरीर ही सुख दे सकता है। एक साधु एक मिष्ठान्न-विक्रेता से बहुत प्रसन्न हुए और उसे स्वर्ग भेजने का प्रस्ताव रखा। परन्तु वह अपने बाल-बच्चों, दुकान, मकान, खेतों तथा अन्य सम्पत्तियों के प्रति इतनी प्रबल आसक्ति का भाव रखता था कि उसने एक मिठाईवाले के रूप में ही अपने बच्चों को बड़े होते तथा उन्नति करते हुए देखना पसन्द

किया। उसने अपने ऊसर हो रहे खेतों की जुताई के लिये बैल का जन्म लिया, फिर अपने घर की रखवाली करने के लिये उसने कुत्ते का जन्म लिया, इसके बाद अपने धन की रक्षा करने के लिये उसने साँप का जन्म लिया और अन्त में साधु ने उसके प्रति करुणा से वशीभूत होकर उसके मामले को अपने हाथों में लेकर उसे स्वर्ग में भेज दिया।

उसे ऐसी आसक्ति क्यों थी? इसलिये कि ये चीजें उसे सुख देती थीं, उसे किसी उच्चतर प्रकार के सुख की जानकारी नहीं थी। परन्तु मृत्यु कोई भेदभाव नहीं करती और देर-सबेर प्रत्येक व्यक्ति को मरना पड़ता है। तेज बुखार जीवात्मा को शरीर-रूपी मकान से बाहर निकाल देता है। मनुष्य बड़ी अनिच्छापूर्वक अपना शरीर छोड़ता है, परन्तु चाहे जितनी भी अनिच्छापूर्वक क्यों न हो, शरीर उसे छोड़ना ही पड़ता है। किसी व्यक्ति के पास बड़ा ही सुन्दर मकान हो और उसका मकान के प्रति बड़ा तीव्र लगाव हो, परन्तु यदि उसमें आग लग जाय, तो क्या वह उससे बाहर नहीं निकल आता है, भले ही वह परम दुख के साथ ऐसा करे?

परन्तु आनन्द की इच्छा अत्यन्त स्वाभाविक इच्छा है। यदि तुम एक मछली को पानी से बाहर निकालो और उससे पूछो कि वह विश्व का सम्राट् बनना पसन्द करेगी या फिर उसी गन्दे-से तालाब में रहना। उसका क्या उत्तर होगा? निश्चय ही वह तालाब को ही चुनेगी, क्योंकि जल ही उसका जीवन है, उसके बिना वह जी नहीं सकती। मनुष्य के साथ भी ऐसा ही है। वह सुखी रहना चाहता है, क्योंकि आनन्द ही उसका सच्चा स्वभाव है। वस्तुत: वह आनन्द से उत्पन्न हुआ है, आनन्द में निवास करता है और अन्तत: आनन्द में ही विलीन हो जाता है। परन्तु वह एक भयंकर गलती करता है – वह अपने को शरीर समझ बैठता है और शरीर से प्राप्त होनेवाले सुखों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

इस प्रकार यद्यपि हम बौद्धिक रूप से समझ लेते हैं कि हम स्वाधीन तथा सर्वज्ञ हैं, परन्तु व्यावहारिक जीवन में हम कायरता दिखाते हैं। हम बड़े ईमानदार हो सकते हैं, तथापि बड़े लाचार हैं। माया की ऐसी भयंकर शक्ति है। वेदान्त पर चर्चा करना बड़ा सहज है, परन्तु इसे आचरण में लाना सचमुच ही अत्यन्त कठिन है।

गुरु के प्रति दृष्टिकोण

अतएव सभी धर्म हमें वीरपूजा की आवश्यकता बताते हैं। वीर कौन है? – वह व्यक्ति, जिसने ईश्वर के साथ अपनी अभिन्नता का अनुभव कर लिया है, जिसे आत्मज्ञान हो चुका है, क्योंकि धर्म केवल बातों, विद्वत्ता या विश्वास का नहीं, अपितु अनुभूति का विषय है। केवल ऐसे व्यक्ति को ही ईश्वर पर बोलने का अधिकार है। बाकी सभी अन्धे हैं और यदि वे ईश्वर के बारे में बोलें, तो यह वैसा ही होगा मानो एक अन्धा दूसरे अन्धे को रास्ता दिखाता है और दोनों ही खाई में जा गिरते हैं। केवल अनुभूति-सम्पन्न व्यक्ति ही सच्चे आचार्य या गुरु हो सकते हैं। अत: तुम्हें सुनना, पढ़ना तथा समझना होगा और तदुपरान्त एक सच्चे गुरु की सहायता से अनुभूति करनी होगी। किताबों की ही भाँति आजकल गुरु भी बड़े सस्ते में ही मिल जाते हैं, परन्तु उन गुरुओं से सच्ची सहायता नहीं मिल सकती।

अपने गुरु के प्रति तुम्हारा क्या दृष्टिकोण होना चाहिये? तुम्हें इस दुनिया की किसी भी चीज से, यहाँ तक कि अपनी आत्मा से भी अधिक उन्हीं से प्रेम करना होगा। उनके शब्द तुम्हारे लिये वेदवाक्य हों। केवल तभी तुम उनके आदेशों को अपना सकोगे। "वत्स, यह जगत् झूठा और क्षणभंगुर है; तुम इसके ऊपर उठ जाओ" – यदि वे आदेश निरन्तर तुम्हारे कानों में गुँजित होते रहते हों, तो तुम उनका पालन करोगे और क्रमश: तुममें शक्ति आयेगी और तुम अपने बहिर्गामी इन्द्रियों को संयमित कर सकोगे। अतएव तुम्हारे लिये सच्चा धर्म आरम्भ करने के लिये सर्वप्रथम एक सद्गुरु और उनके प्रति गुरुभक्ति की आवश्यकता है।

शायद तुम कहो – "परन्तु ऐसा गुरु मैं भला कहाँ से प्राप्त करूँगा?" मैं इसका यही उत्तर दूँगा – "जहाँ चाह, वहाँ राह।" ध्यान का अभ्यास करो। महीने में, या यहाँ तक कि तीन महीने में एक दिन निकालो और उसका पूरी तौर से अपने लिये उपयोग करो। बाकी सभी दिन संसार की सेवा करो, परन्तु ध्यान रहे कि उस एक दिन पर किसी का भी दावा न हो। उस दिन किसी निर्जन स्थान में चले जाओ और ध्यान करो। संसार के मिथ्या और क्षणभंगुर स्वरूप पर ध्यान करो; अपने स्वयं के अन्तर्निहित स्वाधीनता तथा ज्ञान पर ध्यान करो, इस बात पर ध्यान करो कि देर-सबेर मृत्यु सुनिश्चित है और स्वयं के अतिरिक्त इस संसार की कोई भी चीज तुम्हें मृत्यु से नहीं बचा सकती। अपने आप से कहो – "अपने मातृगर्भ से मैंने खाली हाथ ही जन्म लिया और यहाँ से मुझे खाली हाथ ही विदा लेना होगा।" अपनी आत्मा की महिमा का चिन्तन करो और अपने इस चिरन्तन तथा सजग मित्र के साथ बातें करते रहो। उसी के साथ रहना, उसी के संग का आनन्द लेना सीखो और अन्य किसी भी वस्तु के लिये व्याकुल मत होओ। यदि तुम ऐसा करो, तो तुम्हारी शक्ति बढ़ती जायेगी; और जब तुम ऐसे ध्यान के द्वारा स्वयं को एक योग्य पात्र बना लोगे, तो गुरु भी आयेंगे और तुम धन्यता एवं आनन्द से परिपूर्ण हो उठोगे। ❑❑❑
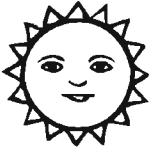
श्रीरामकृष्ण की वाराणसी-यात्रा
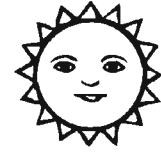
शान्ति प्रसाद घोषाल

(तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थाणि – महापुरुषगण तीर्थों में जाकर उसके तीर्थत्व को जाग्रत रखते हैं। कहते हैं कि तीनों लोकों से न्यारी वाराणसी-काशी भगवान शिव के त्रिशूल पर बसी हुई है। भगवान श्रीरामकृष्ण ने भी वाराणसी की यात्रा की थी। इस विषय पर एक शोधपूर्ण लेख बँगला के त्रैमासिक 'निबोधत' के जुलाई, २००३ के अंक में प्रकाशित हुआ था। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिये इसकी उपादेयता को ध्यान में रखकर इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने वहीं से इसका हिन्दी में अनुवाद किया है। – सं.)

वाराणसी, बनारस या काशी नगर का इतिहास चार हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है। वैदिक साहित्य, रामायण महाभारत और पुराणों में काशी राज्य का उल्लेख मिलता है। काशी को शिवक्षेत्र या विश्वनाथ का राज्य भी कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि यह मोक्षक्षेत्र महादेव के त्रिशूल पर स्थित है और सम्पूर्ण विश्व से पृथक् है। काशी गंगा के पश्चिमी तट पर स्थित है। यहाँ गंगा उत्तरवाहिनी हैं। इसके उत्तर-पश्चिम की ओर 'वरुणा' और दक्षिण-पश्चिम की ओर 'असि' नाम की एक पतली-सी नदी है – इन दोनों नदियों के नाम से काशी का एक अन्य नाम 'वाराणसी' हुआ। गंगा, वरुणा और असि इन तीनों नदियों से घिरी हुई काशी नगरी समस्त पुण्य-क्षेत्रों में पुण्यतम है। इस प्राचीन नगर के विषय में एम. ए. शेरिंग लिखते हैं – ''वाराणसी नगर कम प्राचीन नहीं है; कम-से-कम २६०० वर्ष पहले भी यह नगर प्रसिद्ध था – जब बैबलिन निनेव के साथ सत्ता के लिये संघर्ष कर रहा था और जब एथेंस शक्ति अर्जित कर रहा था। रोम की तब तक प्रसिद्धि नहीं हुई थी, यूनान का तब भी फारस के राजा के साथ युद्ध नहीं हुआ था, नेबूचानार ने तब भी जेरूसेलम पर कब्जा नहीं जमाया था, जूड़िया के निवासी तब भी बन्दी नहीं हुये थे – इन सबके पहले ही वाराणसी की विराटता और महिमा स्थापित हो चुकी थी। उसी (वाराणसी) ने सम्भवत: राजा सुलेमान की कीर्ति सुनकर अपने राजप्रसाद से हाथी के दाँत, बन्दर और मयूर भेजे थे।''

काशी के नामाकरण को लेकर विभिन्न मत हैं। स्कन्द-पुराण के अनुसार एक प्राचीन राजा 'केशिया' या 'काशा' के नाम पर काशी हुआ। कोई-कोई कहते हैं कि 'काश' अर्थात् उज्जवल या ज्योति से काशी बना है – इस क्षेत्र से दिव्य-ज्योति निकलती है। एक अन्य मतानुसार यहाँ के प्राचीन अधिवासी काशिया 'कुश' घास से चटाई बनाकर जीविका उपार्जन करते थे। यही चटाई कुशासन के नाम से विख्यात है। इन्हीं आदिवासियों के नाम पर काशी नगर का नामकरण हुआ है। कुछ अन्य लोग कहते है कि पंचक्रोशी (क्रोश = ढाई मील) लम्बाई के कारण काशी नाम पड़ा है। ब्रिटिश राज्य के दौरान इसका नाम 'बनारस' हो गया। औरंगजेब के राज्य-काल में इसका महम्मदाबाद नाम हुआ और उन दिनों इसी टकशाल के नाम पर मुद्रा बनती थी, लेकिन औरंगजेब की मृत्यु के बाद यह नाम प्रचलित नहीं रह सका।

भारत तथा बाहर के इतिहास-प्रसिद्ध महामानवों ने भी कभी-न-कभी इस नगर में निवास किया है। भगवान बुद्ध ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी में यहाँ आये थे। गोस्वामी तुलसीदास ने काशी में ही रहकर प्रेम और भक्ति के अपने सन्देश का प्रचार किया था। वैष्णव गुरु रामानन्द ने चौदहवीं शताब्दी में काशीवास किया था। सन्त कबीर और रविदास ने वाराणसी में ही जन्म लिया था। रानी लक्ष्मीबाई का जन्मस्थान यहीं है। वल्लभाचार्य ने पन्द्रहवी शताब्दी में यहाँ गोपाल-मन्दिर की स्थापना की। गुरु नानकदेव और गुरु गोविन्द सिंह ने भी यहाँ अपनी चरणधूलि दी है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी काशीवास किया था। यह नगर वैष्णवों के चार धामों में एक है; बाकी तीन धाम हैं – वृन्दावन, पुरी और नवद्वीप। राजा राममोहन राय ने भी कुछ वर्षों तक वाराणसी में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी शास्त्र-ज्ञान अर्जन करने हेतु काशीवास किया था। श्रीरामकृष्ण देव भी तीर्थ करने काशी आये और उन्होंने कुछ दिन केदार-घाट के पास वापुली परिवार के घर में कुछ दिन बिताये थे। त्रैलंग स्वामी ने बहुत दिन तक काशी में रहकर लीलाएँ की। माँ सारदामणि और स्वामी विवेकानन्द ने भी काशी में पदार्पण किया था। वाराणसी हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिक्खों का एक प्रमुख तीर्थ है। चीनी यात्री फाह्यान और ह्वेनत्सांग ने भी काशीवास किया था। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक, राजा हो या प्रजा, कोई भी काशी के आर्कषण से नहीं बच सका। प्राचीन काल में श्रीकृष्ण, भीष्मदेव, हरिश्चन्द्र, हनुमान आदि से लेकर आधुनिक काल के अनेक राजा-रानियों का नाम काशी के घाटों से जुड़ा है। 'बुढ़ापे की काशी' के घाटों तथा गलियों के इतिहास इसके साक्षी हैं। गंगा में स्नान और बाबा विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा की कृपा से जीव इस क्षेत्र में मोक्षलाभ कर सकता है। माँ अन्नपूर्णा की कृपा से यहाँ किसी दिन कोई भूखा नहीं रहता।

धर्मपिपासु, पर्यटक, व्यवसायी, संगीतज्ञ और विद्यार्थी – काशी सबका अभाव मिटाती है। सर्वोपरि काशी सबका मुक्तिक्षेत्र है – श्रीरामकृष्ण को ऐसी ही दिव्यानुभूति हुई थी।

श्रीरामकृष्ण ने दो बार तीर्थयात्रा की थी – पहली बार १८६३ ई. में और दूसरी बार १८६८ ई. में। पहली यात्रा में उनके साथ थे – उनकी माँ, दक्षिणेश्वर मन्दिर के पुरोहित राम चट्टोपाध्याय और मथुरबाबू के पुत्र। इस यात्रा के दौरान वे दो बार काशी और एक बार प्रयाग गये। इस यात्रा के समय श्रीरामकृष्ण साधना की उच्च अवस्था में थे और सम्भवत: इसी बार उन्हें स्वर्णमयी काशी का दर्शन हुआ था। इन दिनों बाह्य जगत् के साथ उनका कोई विशेष सम्पर्क न रहने के कारण उस बार की विभिन्न घटनाओं के वृत्तान्त उनसे नहीं सुने जा सके। कहते हैं कि उस बार तीर्थयात्रा के दौरान वे राम चट्टोपाध्याय की सहायता से ही चलना-फिरना करते थे।

१८६८ की तीर्थयात्रा के तीन कारण सम्भव हैं। पहला – आध्यात्मिक गुरु के रूप में श्रीरामकृष्ण जानना चाहते थे कि आम लोगों की आध्यात्मिक एवं जागतिक अवस्था कैसी है? दूसरा – श्रीरामकृष्ण जैसे महामानव की उपस्थिति से तीर्थक्षेत्र के माहात्म्य में वृद्धि होती है। तीसरा – भक्त मथुर और उनकी पत्नी जगदम्बा की मनोकामना पूरी करने हेतु माँ काली के आदेश पर उन्होंने इस यात्रा की स्वीकृति दी।

इस द्वितीय यात्रा के समय श्रीरामकृष्ण के साथ हृदय, मथुरबाबू, जगदम्बा, उनकी सभी पुत्र-वधुएँ और अन्य स्त्री-पुरुषों को मिलाकर करीब सवा सौ यात्री थे। २७ जनवरी १८६८ ई. को एक द्वितीय श्रेणी और दो तृतीय श्रेणी के रेलवे कोच आरक्षित कराकर उन लोगों ने बैद्यनाथ धाम, वाराणसी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन की तीर्थयात्रा की और चार महीने बाद उसी वर्ष मई के प्रारम्भ में लौट आये। इस यात्रा में एक लाख से भी अधिक रुपये खर्च हुए थे। १८६८ ई. में यात्रा के समय वे लोग कुल मिलाकर पाँच सप्ताह काशी में रहे। वैद्यनाथ दर्शन के बाद वे लोग सीतारामपुर स्टेशन से मुगलसराय के लिये रवाना हुये। लेकिन रास्ते में एक झंझट खड़ा हो गया। श्रीरामकृष्ण और हृदय मुगलसराय से पहले एक स्टेशन पर किसी कारणवश उतरे और उनके बोगी तक पहुँचने के पहले ही ट्रेन छूट गयी। मथुरबाबू ने तार किया कि अगली गाड़ी से उन्हें भेज दिया जाय, लेकिन उन्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कलकत्ता के बागबाजार-निवासी रेलवे के एक विशिष्ट कर्मचारी राजेन्द्रलाल वन्दोपाध्याय रेलवे के एक सैलून में उसी स्टेशन पर ठहरे थे। राजेन्द्रबाबू ने श्रीरामकृष्ण तथा हृदय को अपनी गाड़ी से मुगलसराय पहुँचा दिया और मथुरबाबू निश्चित हुये। मुगलसराय से वे लोग नौका द्वारा काशी पहुँचे। श्रीरामकृष्ण द्वारा विभिन्न समयों पर बताया गया काशी का तीर्थ-वृत्तान्त प्रस्तुत है –

राजा बाबू का मकान और किराये का मकान – काशी-निवास के समय श्रीरामकृष्ण के साथ मथुरबाबू अपने मित्र जमींदार (राजा) आनन्द प्रसाद वापुली के मकान पर ठहरे। इस विषय में ठाकुर ने कहा था – "उस अवस्था में ईश्वरीय प्रसंग के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता था। वैषयिक चर्चा होते सुनकर मैं बैठकर रोया करता था। जब मथुरबाबू मुझे अपने साथ तीर्थों को ले गए, तब थोड़े दिन हम वाराणसी में राजाबाबू के मकान पर रहे। मैं मथुरबाबू के साथ बैठकखाने में बैठा था; राजाबाबू भी थे। मैंने देखा कि वे सांसारिक बातें कह रहे हैं। 'इतने रुपये का नुकसान हुआ है' – आदि बातें। मैं रोने लगा, बोला 'माँ, मुझे यह कहाँ ले आयी ! मैं रासमणि के मन्दिर में कहीं अच्छा था। तीर्थ करने आकर भी वे ही कामिनी-कांचन की बातें ! पर वहाँ (दक्षिणेश्वर में) तो विषय-चर्चा सुननी नहीं पड़ती थी।' "[१]

कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण का मानसिक कष्ट देखकर मथुर बाबू ने मैनेजर के माध्यम से केदार घाट और हरिश्चचन्द्र घाट के बीच लाली घाट के निकट दो लगे हुए मकान किराये पर लेकर ठाकुर को वहीं ले आये। ये दोनों मकान भी वापुली परिवार के ही थे। इस समय बी/६/९४ केदारघाट के मकान में ठाकुर के नाम पर एक संस्था है – नाम है 'श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की पादुका आसन प्रतिष्ठान'। श्री अजित वापुली राजा बाबूओं के प्रपौत्र हैं। वे ही इस मकान की व्यवस्था देखते हैं। उनके मतानुसार श्रीरामकृष्ण काशी निवास के समय सर्वदा इसी मकान में रहे। दूसरे मकान की मरम्मत हुई है और वह भी पास ही स्थित है। स्वामी सारदानन्द और अक्षयचैतन्य के मतानुसार मथुरबाबू ने काशी निवास-काल के दौरान केदारघाट के ऊपर एक-दूसरे से लगे दो मकान किराये पर लिये थे।

पंचतीर्थ – "वाराणसी में मणिकर्णिका आदि पंचतीर्थों (असि-संगम घाट, दशाश्वमेध घाट, मणिकर्णिका घाट, पंचगंगा घाट, वरुणा-संगम घाट) के दर्शनार्थ प्राय: लोग गंगाजी से नाव में जाते हैं। मथुरबाबू भी श्रीरामकृष्ण को लेकर इसी तरह वहाँ दर्शन करने गये थे।"[२] श्रीरामकृष्ण ने इन पंचतीर्थों का नौका से दर्शन किया और मणिकर्णिका तथा वेणीमाधव के मन्दिर में उन्हें विशेष दर्शन हुए थे।

असि संगम घाट – कहते हैं कि शुम्भ और निशुम्भ दैत्यों का वध करने के बाद यहीं पर देवी दुर्गा का असि (तलवार) गिरा था। उसके गिरने से यहाँ असि नदी की उत्पत्ति हुई और क्षीण असि नदी वाराणसी के दक्षिणी छोर पर गंगा में मिल गयी। इस संगम में स्थित कई मन्दिरों में वेणीराज परिवार द्वारा निर्मित जगन्नाथ मन्दिर प्रसिद्ध है। असि घाट से संगम करीब एक किलोमीटर दूर है। सम्भवत:

१. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, महेन्द्रनाथ गुप्त, नागपुर, १९९९, भाग १, पृ. ६३ (इसके बाद – 'वचनामृत')

२. श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, स्वामी सारदानन्द, नागपुर, द्वितीय सं., खण्ड २, पृ. ३४६ (इसके बाद – 'लीलाप्रसंग')

प्रदूषण से बचाने हेतु असि नदी को खिसका दिया गया है।

दशाश्वमेघ घाट – कहते हैं कि यहीं राजा दशरथ के साथ अन्य राजाओं ने दश अश्वमेघ यज्ञ किये थे। भक्तों का विश्वास है कि इस घाट पर स्नान करने के बाद घाट पर उपस्थित शिवलिंग की पूजा करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। सम्भवत: इसीलिये पेशवा बाजीराव द्वारा निर्मित यह घाट भक्तों को इतना प्रिय है।

मणिकर्णिका घाट – मणिकर्णिका के समीप काशी का प्रमुख श्मशान है। "मथुरबाबू की नाव जब मणिकर्णिका घाट के सामने उपस्थित हुई, उस समय श्मशान-भूमि चिता के धुँए से परिपूर्ण थी – वहाँ पर शवदाह हो रहा था। भावमय श्रीरामकृष्णदेव की दृष्टि सहसा उधर पड़ते ही वे एकदम आनन्द से उत्फुल्ल हो उठे तथा रोमांचित हो दौड़कर नाव के बाहर निकल आये और नाव के बिल्कुल किनारे पर खड़े होकर समाधिस्थ हो गये। यह सोचकर कि वे कहीं 'गंगाजी में गिर न पड़ें' मथुरबाबू के पण्डा तथा नाव के मल्लाह श्रीरामकृष्ण को पकड़ रखने के लिए दौड़े। किन्तु किसी को पकड़ना नहीं पड़ा; लोगों ने देखा – श्रीरामकृष्ण शान्त-अचल-निश्चेष्ट रूप से खड़े हैं, एक अद्भुत ज्योति तथा हास्य से उनका मुखमण्डल उद्भासित हो उठा है और उसने मानो उस स्थल को शुद्ध ज्योतिर्मय बना दिया है।"[३]

उन्होंने देखा था – "पिंगलवर्ण जटाजूटधारी दीर्घाकार एक श्वेतवर्ण पुरुष धीरे-धीरे श्मशान की प्रत्येक चिता के समीप आ रहे हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को यत्नपूर्वक उठाकर उसके कान में तारक-ब्रह्म-मंत्र प्रदान कर रहे हैं! – सर्वशक्तिमयी जगदम्बा भी स्वयं महाकाली रूप से जीव की दूसरी ओर उस चिता पर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार-बन्धनों को खोल दे रही हैं और निर्वाण के द्वार को उन्मुक्त कर अपने हाथ से उसे अखण्ड के घर पर भेज रही हैं। इस तरह अनेक कल्प की तपस्यादि के द्वारा जीव को जिस अद्वैतानुभवजनित भूमानन्द की प्राप्ति होती है, विश्वनाथ तत्काल ही उस वस्तु को प्रदान कर उसे कृतार्थ कर रहे हैं।"[४]

इसी घाट के समीप मणिकर्णिका कुण्ड और मणिकर्णिकेश्वर शिव-मन्दिर है। कहते हैं कि जब भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से शिव के कन्धे पर स्थित सती के देह का छेदन किया था, तब सती के कान का कुण्डल इसी कुण्ड में गिरा था। मणिकर्णिकेश्वर शिव-मन्दिर के स्वयम्भू शिवलिंग भूमितल में लगभग छह मीटर नीचे अवस्थित है।

पंचगंगा घाट – इसी घाट के पास स्थित है – त्रैलंग स्वामी का मन्दिर, बिन्दुमाधव मन्दिर, वेणीमाधव की ध्वजा (आलमगीर मस्जिद)। कहते हैं कि और भी चार नदियाँ – धौतपाप, किरणनदी, धर्मनद और सरस्वती – यहाँ आकर गंगा में मिल गयी हैं। यहाँ "वे कई बार परमहंसाग्रगण्य श्रीयुत त्रैलंग-स्वामीजी के दर्शन करने गये थे। स्वामीजी तब मौन धारण करके मणिकर्णिका घाट पर रहते थे। प्रथम दर्शन के दिन स्वामीजी ने अपनी नस्य (सुंघनी) की डिबिया श्रीरामकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत कर उनका स्वागत तथा उन्हें सम्मान प्रदर्शित किया। श्रीरामकृष्ण ने उनके इन्द्रियों तथा शारीरिक अवयवों के गठन को देखकर हृदय से कहा था, 'इनमें यथार्थ परमहंस के लक्षण विद्यमान हैं, ये साक्षात् विश्वेश्वर हैं।' स्वामीजी ने उस समय मणिकर्णिका के निकट एक घाट बाँध देने का संकल्प किया था। श्रीरामकृष्णदेव के अनुरोध पर हृदय ने कुदाल के द्वारा वहाँ कुछ मिट्टी डालकर उस कार्य में सहायता की थी। तदनन्तर एक दिन श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी के दर्शनार्थ जाकर उन्हें अपने हाथों से खीर खिलायी थी।"[५] त्रैलंग स्वामी का मन्दिर पंचगंगा घाट के ऊपर एक पतली गली में स्थित है। वहाँ एक विशाल शिवलिंग तथा त्रैलंग स्वामी की मूर्ति स्थापित है।

वेणीमाधव का मन्दिर त्रैलंग स्वामी के मन्दिर के निकट ही स्थित है। बाहर से यह मन्दिर एक हवेली जैसा दिखता है। कहते हैं कि औरंगजेब ने पुराने मन्दिर को मस्जिद में रूपान्तरित करा दिया था। मस्जिद भी इस मन्दिर के सामने ही स्थित है। औरंगजेब का यह मस्जिद वेणीमाधव की ध्वजा के नाम से ही प्रसिद्ध है, क्योंकि १७वीं शताब्दी में वेणीमाधव नामक एक मराठा राजा ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। श्रीरामकृष्ण ने इस मन्दिर में विष्णुमूर्ति का दर्शन किया। इस दर्शन के विषय में लिखा है – "महादेव के दर्शनार्थ आये हुए देवता तथा ऋषिगण जब काशी में प्रवेश कर रहे थे, तब विश्वनाथ ने उनसे कहा – 'भूमण्डल में वाराणसी जैसा क्षेत्र नहीं, मणिकर्णिका जैसा तीर्थ नहीं और विश्वनाथ-लिंग के समान शिवलिंग नहीं, इसीलिये इसमें मैं भवानी के साथ पूर्ण रूप से विराजित हूँ और नारायण के समान कोई मेरा प्रियतम नहीं। अत: नारायण की उपेक्षा कर मेरी पूजा करने से मैं प्रसन्न नहीं होऊँगा।' " इस शिव-वाक्य का स्मरण कर ठाकुर वेणीमाधव का दर्शन करने गये।

वरुणा-संगम घाट – यह वरुणा तथा गंगा नदियों का संगम-स्थल वाराणसी के उत्तरी भाग में स्थित है। यहाँ का कोलाहल-रहित सुन्दर परिवेश है। यहाँ आदिकेशव, संगमेश्वर और ब्रह्मेश्वर के मन्दिर हैं। कृष्णमूर्ति ट्रस्ट का शिक्षा-संस्थान तथा भारत सरकार का पुरातत्त्व विभाग भी पास ही है।

३. वही, खण्ड २, पृ. ३४६-४७

४. वही, खण्ड २, पृ. ३४७

५. वही, खण्ड १, पृ. ४००

विश्वनाथ मन्दिर – यह मन्दिर काशी का प्राचीनतम मन्दिर है। गर्भगृह में, द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक – विश्वनाथ का ज्योतिर्लिंग है। वर्तमान का छोटा-सा मन्दिर-परिसर कभी काफी विशाल हुआ करता था। ११९४ ई. में मुहम्मद गोरी के सेनापति ने विश्वनाथ सहित काशी के अन्य अनेक मन्दिरों को तोड़ डाला और १२३६-४० ई. में सुल्ताना रजिया ने भग्न मन्दिर के स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण कराया। विश्वनाथ का नया मन्दिर बना, तो उसे भी १४८९-१५१७ ई. के दौरान सिकन्दर लोदी ने ध्वंस करा दिया। इसके बाद १५८५ ई. में राजा टोडरमल ने पुन: नये मन्दिर का निर्माण कराया। १६६९ ई. में औरंगजेब ने पुन: इस मन्दिर को ध्वस्त किया और वहाँ एक मस्जिद बना। इसी के पास एक साधारण-सा मन्दिर बनाकर विश्वनाथजी को पुन: प्रतिष्ठित किया गया। १७७४ ई. में रानी अहल्या बाई ने वर्तमान मन्दिर की स्थापना की और पंजाब के राजा रणजीत सिंह ने मन्दिर के शिखर को स्वर्ण-मण्डित कराया। मन्दिर के उत्तरी तरफ ज्ञानवापी कूप है। कहते हैं कि विधर्मियों के हाथ से बचाने हेतु शिवलिंग को इसी कूप में छिपाकर रखा गया था। प्रसिद्ध विश्वनाथ गली के टेढ़े-मेढ़े सँकरे रास्तों से होकर मन्दिर में जाना पड़ता है। मन्दिर की ऊँचाई ५१ फीट है और वह चहारदीवारी से घिरा हुआ है। श्रीरामकृष्ण के इस मन्दिर में शुभागमन के बारे में लिखा है – "वहाँ रहते समय श्रीरामकृष्ण प्राय: प्रतिदिन एक छोटी नाव में बैठकर विश्वनाथजी का दर्शन करने जाते थे। हृदय उनके साथ रहता था। वहाँ जाते-जाते ही श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो जाया करते थे, देवदर्शन के समय का तो कहना ही क्या है !"[६]

अन्नपूर्णा मन्दिर – यह विश्वनाथ-मन्दिर के पश्चिम की ओर स्थित है। मन्दिर की निचली मंजिल में अन्नपूर्णा की प्रस्तर-मूर्ति है और ऊपरी मंजिल में सोने की अन्नपूर्णा-मूर्ति तथा सामने चाँदी के महादेव हैं। वर्ष में केवल तीन दिन – दीपावली के चर्तुदशी से प्रतिपदा तक भक्तगण इस सोने की मूर्ति का दर्शन कर सकते हैं। कई बार विधर्मियों द्वारा ध्वस्त होने के बाद १७२५ ई. में मराठा राजा विष्णुपद गाजाड़े ने वर्तमान मन्दिर को बनवाया। श्रीरामकृष्ण के इस मन्दिर के शुभागमन के विषय में लिखा है – "दीपावली के दिन अन्नपूर्णा की सुवर्णमयी प्रतिमा का दर्शन कर श्रीरामकृष्णदेव भाव तथा प्रेम में तन्मय हो गये थे।"[७] "लगभग पन्द्रह दिन वृन्दावन में रहकर मथुरबाबू आदि सभी लोग पुन: काशीधाम वापस आये।... उस समय वहाँ पर श्रीरामकृष्ण देव ने स्वर्णमयी अन्नपूर्णा प्रतिमा का दर्शन किया था।"[८] "भावावेश में मैंने देखा, एक संन्यासी मेरा हाथ पकड़कर मुझे लिए जा रहा है। एक ठाकुर-मन्दिर में मैं घुसा, वहाँ सोने की अन्नपूर्णा देखी।"[९]

दुर्गा-मन्दिर – अठारहवीं शताब्दी के अन्त में नाटोर की रानी भवानी ने असि-संगम के समीप लाल पत्थरों से यह मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में बन्दर बड़ा उपद्रव मचाते हैं। कहते हैं कि शुम्भ-निशुम्भ नामक दोनों असुरों की यहीं मृत्यु हुई थी। गर्भगृह में दशभुजा दुर्गा-मूर्ति है – मन्दिर के पास विशाल सरोवर है। इस मन्दिर में श्रीरामकृष्ण के शुभागमन के विषय में लिखा है – "भगवती दुर्गा ने जन-पीड़क दुर्गमासुर का वध करने के बाद जिस नदी के किनारे अपने असि (खड्ग) को धोया, उसी पवित्र असि नदी के पास दुर्गा माता का मन्दिर है। करुणामयी के पूण्य-दर्शन और महिमा-स्मरण से ठाकुर इतने आनन्द-विभोर हुए कि उस समय उन्हें अपनी देह या जगत् का जरा भी बोध नहीं रहा।"[१०]

उल्लेखनीय है कि मदनपुरा के वीणावादक महेश सरकार के मकान के पास यह पुराना दुर्गा-मन्दिर है – यह मन्दिर १७३७ ई. में बना था। चौसठ योगिनी मुहल्ले में साधक श्यामाचरण लाहिड़ी का मकान इस मन्दिर के समीप ही है।

केदारनाथ मन्दिर – केदारघाट के ऊपर ही केदारेश्वर या केदारनाथ मन्दिर है – घाट से मन्दिर तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। गर्भगृह में केदारेश्वर का अनादि लिंग है। इस मन्दिर की व्यवस्था दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों द्वारा होती है। श्रीरामकृष्ण के इस मन्दिर में शुभागमन के विषय में लिखा है – "एक तैलंग-देशीय पंगु-भक्त हिमालय में केदारनाथ-दर्शन की इच्छा से किसी तरह काशी तक पहुँचे। मार्ग की थकान के कारण उनका जीवन संकट में पड़ गया और वे आगे नहीं चल सके, तब केदार के निमित्त खिचड़ी निवेदित करने पर उन्होंने देखा कि प्राणियों के प्राणस्वरूप उसी अन्न के ऊपर आशुतोष शिव प्रगट हुए हैं। तब आनन्द के आवेश से उसका कण्ठ में आगत प्राण देवाधिदेव की वायुमूर्ति में विलीन हो गया। तब से अन्न-प्रसारवत् इस लिंग का नाम 'केदारनाथ' हुआ। एकनिष्ठ भक्त के भक्ति का स्मरण करते हुए केदारनाथ का दर्शन करके ठाकुर इतने मुग्ध हुए कि उन लोगों ने मन्दिर के समीप ही निवास किया।"[११] स्वामी सारदानन्दजी ने भी लिखा है, "सभी देवस्थानों में उनका भावावेश होने पर भी केदारनाथजी के मन्दिर में वे अधिक भावाविष्ट होते थें।"[१२]

नानकपन्थियों का मठ : गुरुनानक (१४६९-१५३३ ई.)

६. वही, खण्ड १, पृ. ३९९

७. वही, खण्ड २, पृ. ३५२

८. वही, खण्ड १, पृ. ४०१

९. 'वचनामृत', खण्ड २, पृ. ९६१

१०. चरणचिह्न धरे (बँगला), निर्मल कुमार राय, कोलकाता, पृ. २०४

११. वही, पृ. २०५

१२. 'लीला-प्रसंग', भाग १, पृ. ३९९-४००

के पुत्र उदासीनाचार्य जगद्गुरु भगवान श्रीचन्द्रजी महाराज इस मठ के संस्थापक थे। गर्भगृह में इन्हीं की मूर्ति स्थापित है। इन्होंने १४९४ ई. में जन्मग्रहण किया था। नानकपन्थी लोग हिन्दू देवी-देवताओं की भक्ति व पूजा करते हैं। मन्दिर चहारदीवारी से घिरा है। रवीन्द्रपुरी के पीछे कुरुक्षेत्र का तालाब है। इसका प्रवेशद्वार नये मुहल्ले रवीन्द्रपुरी के भीतर से है। यह मन्दिर लाल दुर्गा-मन्दिर से उत्तर-पूर्व में करीब ५ किलोमीटर दूरी पर स्थित है। यहाँ श्रीरामकृष्ण के आगमन के विषय में उनकी अपनी ही उक्ति है – "काशी में मैंने एक नानकपन्थी लड़का साधु देखा था। उसकी आयु तुम्हारे (वचनामृत-लेखक) जितनी होगी। मुझे 'प्रेमी साधु' कहता था। काशी में उनका मठ है। एक दिन मुझे न्यौता देकर वहाँ ले गया। महन्त को देखा जैसे एक गृहिणी। मैंने उससे पूछा, 'उपाय क्या है?' उसने कहा, 'कलियुग में नारदीय भक्ति चाहिए।' पाठ कर रहा था, पाठ समाप्त होने पर बोला – 'जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके। सर्वं विष्णुमयं जगत्।' सब के अन्त में कहा, 'शान्तिः ! शान्तिः ! प्रशान्तिः !'

"एक दिन उसने गीतापाठ किया। हठ और दृढ़ता भी ऐसी कि विषयी आदमियों की ओर होकर न पढ़ता था। मेरी ओर होकर पढ़ा। मथुरबाबू भी थे। उनकी ओर पीठ फेरकर पढ़ने लगा। उसी नानकपन्थी साधु ने कहा था, 'उपाय है नारदीय भक्ति'।... वे लोग वेदान्तवादी हैं, परन्तु भक्तिमार्ग भी मानते हैं। बात यह है कि अब कलिकाल में वेदमत नहीं चलता।... कलि के लिए तो तंत्रोक्त मत है।"[१३]

श्रीरामकृष्ण ने और भी बताया – "काशी में देखा, बड़े-बड़े महन्तों का बड़ा मान है – कितने ही अमीर हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़े थे और कह रहे थे – कुछ आज्ञा हो।"[१४]

वीणावादक महेशचन्द्र सरकार का मकान – महेश सरकार के पिता बलराम सरकार काशी के बंगाली टोला के मदनपुरा में स्थायी रूप से रहते थे। उन्होंने अपने घर में रामेश्वर शिवलिंग की स्थापना कर रखी थी। महेशबाबू ने गणेशचन्द्र बाजपेयी से सितार और वीणावादन सीखा था। महेश बाबू के वंशज अब भी उसी मकान रहते हैं, लेकिन महेश बाबू की वीणा अब रामनगर पैलेस के म्यूजियम में रखी है। वीणा सुनने की प्रबल इच्छा से संगीत-प्रेमी श्रीरामकृष्ण ने महेश बाबू के घर पदार्पण किया। इस विषय में लिखा है – "श्रीरामकृष्ण के अनुरोध पर उन्होंने (महेश बाबू) उस दिन परम आनन्दित होकर बहुत देर तक वीणावादन किया। वीणा की मधुर झंकार सुनते ही श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गये, तदनन्तर अर्धबाह्य दशा उपस्थित होने पर वे श्रीजगदम्बा से प्रार्थना करने लगे – 'माँ, मुझे होश में ला दो, मैं अच्छी तरह से वीणा सुनना चाहता हूँ।' इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद उनके लिए बाह्य भावभूमि में रहना सम्भव हो सका था और उन्होंने आनन्द के साथ वीणा-वादन सुनते हुए बीच-बीच में उसके सुर के साथ अपना कण्ठ-स्वर मिलाकर भजन भी गाया था। अपराह्न के पाँच बजे से रात के आठ बजे तक इस प्रकार आनन्दपूर्वक समय व्यतीत होने के बाद महेशबाबू के विशेष आग्रह से वहाँ पर कुछ जलपान कर वे मथुरबाबू के पास आये। तब से महेशबाबू प्रतिदिन श्रीरामकृष्णदेव के दर्शनार्थ आया करते थे। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि वे वीणा-वादन करते हुए एकदम विह्वल हो जाते थे।"[१५]

भैरवी ब्राह्मणी योगेश्वरी देवी का मकान, चौसठ योगिनी मुहल्ला – भैरवी ब्राह्मणी चौसठ योगिनी मुहल्ले में रहती थीं। केदार घाट और दशाश्वमेघ घाट के ऊपर चौंसठ योगिनी मन्दिर स्थित है। बंगाली टोला और मदनपुरा के भीतर से पैदल चलकर वहाँ जाने का मार्ग है। दुर्गापूजा के समय इस मन्दिर से संलग्न गली में अनेक सपेरे साँप का खेल दिखाते हैं। ठाकुर योगीश्वरी देवी के इस आवास पर कई बार आये थे – परन्तु वह मकान अब भी अज्ञात है। ठाकुर वृन्दावन जाते समय भैरवी को काशी से वृन्दावन ले गये थे और बाद में वृन्दावन में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

भैरव-भैरवियों का चक्र – भैरव-भैरवियों का अखाड़ा सम्भवतः केदार और हरिश्चन्द्र घाट के बीच किसी स्थान पर था। परन्तु वर्तमान में उसका कोई चिह्न नहीं मिलता। राजाबाबू (बापुली) के प्रपौत्र अजीत वापुली का विचार है कि वह चक्र उनके घर के पास के लाली घाट के निकट स्थित था। उनके पितामह के समय भैरव-भैरवी उनके घर आया करते थे। श्रीरामकृष्ण इस भैरवी चक्र में गये थे। उन्होंने इस प्रसंग में कहा था – "वाराणसी में एक व्यक्ति मुझे भैरवी-चक्र में ले गया था। एक-एक भैरव, और एक-एक भैरवी। वे मुझे शराब पीने के लिए कहने लगे। मैंने कहा, 'माँ, मैं शराब छू नहीं सकता।' वे सब शराब पीने लगे। मैंने सोचा, अब शायद जप-ध्यान करेंगे। लेकिन नहीं, मदिरा पीकर नाचना शुरू कर दिया।"[१६]

मथुरबाबू ने काशी में ब्राह्मण-पण्डितों को माधुकरी दी थी। माधुकरी वाले दिन ठाकुर ने देखा था कि ब्राह्मण-पण्डितों के बीच आपस में झगड़ा-विवाद और यहाँ तक कि मारपीट होने लगी। श्रीरामकृष्ण ने कहा था – "सोचा था कि काशी में सभी लोगों को चौबीसों घण्टे शिव के ध्यान में मग्न देखूँगा, परन्तु वहाँ... जाकर देखा सब कुछ उल्टा है।"

१३. 'वचनामृत', खण्ड १, पृ. ३१५
१४. 'वचनामृत', खण्ड १, पृ. ६००
१५. 'लीला-प्रसंग', भाग १, पृ. ४०१-०२
१६. 'वचनामृत', खण्ड २, पृ. १२२१; खण्ड १, पृ. ६६२

फिर राजा बाबू के बैठकखाने में भी रुपये-पैसों आदि जागतिक विषयों पर चर्चा सुननी पड़ती थी।

इस प्रकार वहाँ सामान्य लोगों में विषयानुराग प्रबल देख कर श्रीरामकृष्ण व्यथित हुए, तथापि वहाँ अद्भुत दर्शनादि पाकर उन्हें शिव-महिमा तथा काशी-माहात्म्य के विषय में दृढ़ धारणा हुई थी। उन्होंने भावनेत्रों से देखा कि शिवपुरी वास्तव में ही स्वर्ण-निर्मित है। सचमुच ही युग-युगान्तर से साधु-भक्तों के कांचन-तुल्य उज्ज्वल अमूल्य हृदय की भावराशि ने परत-दर-परत पुंजीभूत और घनीभूत होकर इसका वर्तमान आकार लिया है।

काशी के स्वर्णमय रूप का दर्शन करके श्रीरामकृष्ण यह सोचकर चिन्तित हो उठे कि वे शौचादि कैसे करेंगे! वे प्रतिदिन पालकी में बैठकर काशी से बाहर जाते और असी घाट के उस पार जाकर नित्य-कर्म निपटा कर लौटते। इस दर्शन के विराम हो जाने के बाद से उन्हें इस तरह जाना नहीं पड़ता था।

तीर्थ से लौटकर आने के बाद अनेकों बार बातचीत के दौरान उन्होंने वाराणसी के बारे में पूछताछ तथा चर्चा की थी। मणि मल्लिक के काशी से लौटने के बाद श्रीरामकृष्ण ने उनसे त्रैलंग स्वामी तथा भास्करानन्द स्वामी के बारे में चर्चा की थी। फिर कहा था, "यदि व्याकुलता न हो, तो फिर वाराणसी जाने की क्या आवश्यकता? व्याकुलता रहे तो यहीं पर वाराणसी है।" मजा लेते हुए कहा था, "काशी में अन्नपूर्णा के यहाँ कोई भूखा नहीं रहता, परन्तु किसी किसी को शाम तक बैठे रहना पड़ता है।" मर्कट-वैराग्य के विषय में बोले, "संसार की ज्वाला से जलकर गेरुआ वस्त्र पहनकर काशी चला गया। बहुत दिनों तक कोई खबर नहीं। फिर एक पत्र आया – 'तुम लोग कोई चिन्ता न करो, यहाँ मुझे एक काम मिल गया है।' " काशी-माहात्म्य के बारे में कहा था, "यदि किसी का काशी में देहान्त हो, तो मुक्ति होती है; उसे फिर नहीं आना पड़ता।" "काशी में मृत्यु होने पर शिव के दर्शन होते हैं। शिव प्रकट होकर कहते हैं – 'मेरा यह साकार रूप मायिक है, मैं भक्तों के लिए वह रूप धारण करता हूँ – यह देख, मैं अखण्ड सच्चिदानन्द में लीन होता हूँ।' यह कहकर वह रूप अन्तर्धान हो जाता है।" "काशी में ब्राह्मण मरे या वेश्या – सभी शिव होंगे।" हृदय के प्रसंग में बोले, "हृदय जब मुझे बड़ी तकलीफ दे रहा था, तब मेरी इच्छा हुई, यहाँ से काशी चला जाऊँ। सोचा, कपड़े तो लूँगा, परन्तु रुपये कैसे लूँगा? इसीलिए फिर काशी जाना भी न हुआ।" गंगा-स्नान के महत्व के बारे में कहा था, "जो वाराणसी गया हो और जिसने वाराणसी देखी हो, उसी से वाराणसी की बातें सुननी चाहिए।" "वाराणसी के विषय में पढ़ना, वाराणसी के विषय में सुनना और वाराणसी-दर्शन करना – इनमें बहुत अन्तर है।" हृदय की माँ ठाकुर की फूल-चन्दन से पूजा करती थी। ठाकुर ने उनसे कहा था – तुम्हारी काशी में मृत्यु होगी और सचमुच वैसा ही हुआ था। श्रीरामकृष्ण चलायमान तीर्थ हैं – उनके सान्निध्य से जीव तर जाता है। वे जहाँ रहते हैं, वही स्थान काशी है। वचनामृत में लिखा है – श्रीरामकृष्ण देव जब बागबाजार गनू की माँ (योगीन-माँ) के घर पर गये, तब गनू की माँ ने कहा था, 'घर में ले आओ, पैरों की धूल पड़ जायेगी तो मेरा घर वाराणसी हो जायेगा, इस घर में मरूँगी तो फिर किसी बात की चिन्ता न रहेगी।'

श्रीरामकृष्ण ने और भी कहा है – "मथुरबाबू के साथ मैं वाराणसी गया था। मणिकर्णिका के घाट से हमारी नाव जा रही थी; एकाएक मुझे शिव के दर्शन हुए। मैं नाव के एक सिरे पर खड़ा हुआ समाधिमग्न हो गया। मल्लाह हृदय से कहने लगे, 'अरे! पकड़ो!' उन्होंने सोचा, मैं कहीं गिर न जाऊँ। देखा, शिव मानो संसार की कुल गम्भीरता लिए हुए खड़े हैं। पहले मैंने उन्हें दूर खड़े हुए देखा था, फिर मेरे पास आने लगे और मेरे भीतर विलीन हो गये।"[१७]

पुरखों की थाती

दानेन भूतानि वशी भवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानात्
ततः पृथिव्यां प्रवरं हि दानम्।।

– दान के द्वारा सभी प्राणी वश में आ जाते हैं, दान से वैरभाव का भी नाश हो जाता है, दान से पराया व्यक्ति भी अपना मित्र बन जाता है, अतएव इस पृथ्वी पर दान ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है।

देवपूजा दया दानं दाक्षिण्यं दक्षता दमः।
यस्यैते षट्-दकाराः स्युः स देवांशो नरः स्मृतः।।

– देवपूजा, दया, दान, विनम्रता, दक्षता और मन का संयम – 'द' अक्षर से आरम्भ होनेवाली ये छह चीजें जिनके चरित्र में विद्यमान हों, उन्हें देवता के अंश से जन्मा समझना चाहिये।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य-मण्डल-भेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः।।

– दो प्रकार के लोग सूर्य-मण्डल का भेद करनेवाले अर्थात् उत्तरायण मार्ग से परम मुक्ति को प्राप्त करते हैं – एक तो ज्ञानयुक्त परिव्राजक संन्यासी और दूसरे धर्मयुद्ध करते हुए मारा गया शूर-वीर।

१७. 'वचनामृत', खण्ड २, पृ. ९६१

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

११७. बिना कसौटी से नहीं कंचन की पहचान

संत नामदेव जाति और व्यवसाय से दर्जी थे। उनके पिता की कपड़ों की दुकान थी। एक बार पिता को चार दिनों के लिये दूसरे गाँव जाना था, इसलिये उन्होंने जाने से पहले नामदेव को दुकान में बिक्री के लिये रखे वस्त्रों की जानकारी देते हुये बताया कि ग्राहकों से हमेशा नम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये और यथासम्भव वापस नहीं जाने देना चाहिये।

अगले ही दिन एक चोर ने नामदेव को दुकान में अकेले और ध्यानमग्न हो मंत्र-जप करते देखा, तो उसने उन्हें ठगने की सोची। दुकान में आकर उसने कपड़ों के एक थान की कीमत पूछी, तो नामदेव ने आँखें खोलकर 'पाँच सौ रुपये' बताया। चोर ने कहा कि कीमत ज्यादा है और मेरे पास कुल पाँच सौ रुपये ही है। सब दे देने से मेरे पास कुछ नहीं बचेगा। नामदेव बोले, "आप अभी जितना चाहें, दे दें, पर आपको जमानत के रूप में अपनी कोई चीज रखनी होगी। बचा रुपया लाने पर आपकी चीज लौटा दी जायेगी।" चोर ने जेब में हाथ डालकर एक गोल पत्थर निकालकर कहा, "जमानत के रूप में इसी को रख लें। बाद में पाँच सौ रुपये देकर मैं इसे वापस ले लूँगा।" नामदेव ने पत्थर को एक कोने में रखते हुये कहा, "आपने तो मुझे शालिग्राम ही दिया है। सामने कोने में कपड़ा नापने की लोहे की छड़ रखी थी। ज्योंही उसका पत्थर को स्पर्श हुआ, चोर यह देखकर चकित रह गया कि वह छड़ सोने की हो गई थी। उसने नामदेव से कहा, "ये पाँच सौ रुपये अभी ही लें, किन्तु कपड़ों के साथ मुझे वह पत्थर वापस कर दें।"

नामदेवजी ने सोचा कि वह शालिग्राम देवता को अपने पास रखना चाहता है। इसी कारण उसका मत-परिवर्तन हो गया है। उन्होंने थान के साथ पत्थर को दे डाला।

चोर ने जब पत्थर से घर की लोहे की चीजों को स्पर्श किया, तो उसे यह देख बड़ा दुख हुआ कि लोहे की कोई भी चीज सोने की नहीं हुई थी। पहले तो उसने नामदेवजी को ठग समझा, पर बाद में जब उनका भोला और मासूम चेहरा ध्यान में आया, तो वह समझ गया कि बालक सचमुच ही भगवान का भक्त है। इसीलिये तो उसकी छड़ सोने में बदल गई थी। उसे यह भी महसूस हुआ कि उसने पत्थर से सोने की नहीं बल्कि बालक की परीक्षा की है। उसने प्रतिज्ञा की वह चोरी का पेशा छोड़कर अब मेहनत की कमाई करेगा।

लोभ-मोह में फँसे व्यक्ति को सदा इसी बात की धुन लगी रहती है कि चाहे जैसे भी हो उसे ज्यादा-से-ज्यादा मिलता रहे, पर अधिक पाने की लालसा का कभी अन्त नहीं होता। इस छोटी-सी घटना ने चोर के मन में सुई का-सा चुभन दिया और उसकी लोभ की भावना चली गयी।

११८. सत्य-असत्य के जाल में मानव होत भ्रमित

कुमारावस्था में भगवान महावीर 'वर्द्धमान' नाम से जाने जाते थे। उनका निवास सात-मंजिला 'नन्द्यावर्त' में था। एक दिन उनका एक साथी उनसे मिलने घर में आया। माता त्रिशला तलगृह में गृहकार्यों में व्यस्त थीं। मित्र के पूछने पर कि 'वर्द्धमान कहाँ है?', उन्होंने ऊपर की ओर इशारा किया। मित्र सीढ़ियों पर से चल कर सातवीं मंजिल पर गया, तो वर्द्धमान के न दिखाई देने पर वहाँ खड़े महावीर के बड़े भाई से पूछा। उन्होंने जब नीचे की ओर इशारा किया, तो वह पुन: नीचे वापस आने लगा।

सहसा तीसरी मंजिल पर उसे अपना साथी खिड़की में बैठा हुआ दिखाई दिया। महावीर उस समय जीवन की क्षण-भंगुरता और संसार की निस्सारता के बारे में विचारमग्न थे। मित्र ने उनसे कहा, "बड़ी विचित्र बात है कि तुम यहाँ हो, जबकि तुम्हारी माताजी तुम्हें ऊपर और बड़े भैया नीचे बता रहे हैं। उन्होंने सत्य न बोलकर असत्य क्यों कहा।"

वर्द्धमान गम्भीरता से बोले, "माता और भ्राता ने असत्य नहीं कहा। सत्य और असत्य का बखेड़ा हमी लोग खड़ा करते हैं। वास्तविकता को गहराई से जानने का हम प्रयास नहीं करते। यदि मैं तुमसे कौए का रंग पूछूँ, तो तुम क्या बताओगे?" मित्र के द्वारा 'काला' कहने पर वर्द्धमान ने कहा, "अब मुझे बताओ कि क्या कौआ पूरा-का-पूरा काला होता है? अगर तुम 'हाँ' जवाब दोगे, तो यह जवाब गलत होगा, क्योंकि कौऐ के दाँत काले नहीं होते। उसकी हड्डियाँ काली नहीं होतीं। फिर उसे तुमने काला कैसे बताया। हाँ, कौए का बाह्य शरीर अवश्य काला होता है। यही बात हर चीज के बारे में है। हम बाहरी आवरण पर यकीन करके आन्तरिकता का भी विचार नहीं करते। हम इस तथ्य को नहीं जानते कि विषमता में समता और विरोध में समन्वय होता है। जहाँ तक माता व भ्राता के कथनों का सवाल है, दोनों का कथन सत्य था, क्योंकि नीचे से देखने पर मैं ऊपर था और ऊपर से देखने पर मैं नीचे था। अत: हमें शाब्दिक सत्य-असत्य के भ्रमजाल में न फँसकर वास्तविक तथ्य का अन्वेषण करना चाहिये। ❑❑❑

समाचार और सूचनाएँ

२००७-०८ के लिये कार्यकारिणी-समिति की रिपोर्ट का सारांश

रामकृष्ण मिशन की ९९वीं वार्षिक साधारण सभा बेलूड़ मठ में ७ दिसम्बर २००८ को अपराह्न ३.३० बजे आयोजित हुई।

इस साल मिशन ने जम्मू-कश्मीर में श्रीनगर केन्द्र का शुभारम्भ किया। शैक्षणिक क्षेत्र में इस वर्ष की निम्नलिखित गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – विवेकानन्द विश्वविद्यालय द्वारा कोयम्बटूर केन्द्र में General and Adapted Physical Education & Yoga विभाग की शुरुआत, नरेन्द्रपुर (कोलकाता) केन्द्र की नेत्रहीन विद्यार्थी अकादमी द्वारा सी.डी. पर पुस्तकों के प्रकाशन हेतु श्राव्य-पुस्तक-स्टूडियो का उद्‌घाटन, कोयम्बटूर केन्द्र द्वारा CNC (Computerized Numerical Control - कम्प्यूटरीकृत संख्यात्मक संचालन) प्रशिक्षण केन्द्र की शुरुआत, राँची (मोराबादी) केन्द्र द्वारा विवेकानन्द विश्वविद्यालय के 'सर्वांगीण ग्रामीण व आदिवासी विकास' विषय में पंचवर्षीय M.Sc. कोर्स में प्रवेश के लिये विज्ञानेतर विद्यार्थियों को पूर्वापेक्षित विज्ञान-विषयक ज्ञान देने हेतु दो सेतु-बन्धन शिक्षा-कार्यक्रमों की शुरुआत। इसके अलावा निम्नलिखित भवनों का निर्माण कार्य भी पूरा किया गया : पोर्ट ब्लेयर (अन्दमान द्वीप समूह) केन्द्र द्वारा अनाथ और असहाय बच्चों के लिये छात्रावास, कड़पा (आन्ध्र-प्रदेश) केन्द्र द्वारा विद्यार्थी-भवन एवं विजयवाड़ा (आन्ध्रप्रदेश), चेन्नई विद्यापीठ तथा पश्चिम बंगाल स्थित मालदा, जयरामबाटी और रहड़ा (कोलकाता) केन्द्रों द्वारा स्कूल-भवन।

चिकित्सा-क्षेत्र में इस वर्ष की निम्नलिखित गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : कोलकाता-स्थित सेवा प्रतिष्ठान अस्पताल केन्द्र में फिजिओथेरापी एवं ऑपटोकमेट्री में स्नातक कोर्स, लखनऊ केन्द्र के अस्पताल में १३ शय्या का नेफ्रोलॉजी विभाग, कार्डियक केथरटाइजेशन लैब और पेथोलॉजी लैब का वर्चुअल म्यूजियम, नरेन्द्रपुर (कोलकाता) केन्द्र के नेत्रविहीन विद्यार्थी अकादमी द्वारा अल्पदृष्टि केन्द्र और चिकित्सालय और बेलगाँव (कर्नाटक) केन्द्र द्वारा दातव्य नेत्र-चिकित्सालय की शुरुआत। इसके अलावा निम्नलिखित भवनों का निर्माण भी किया गया – सेवा प्रतिष्ठान (कोलकाता) द्वारा अस्पताल की ७ मंजिला इमारत, आलो (अरुणाचल प्रदेश) केन्द्र द्वारा छात्रावास के विद्यार्थियों के लिये १०-शय्या-युक्त अस्पताल और कनखल (हरिद्वार) केन्द्र द्वारा रोगियों के निकट सम्बन्धियों के ठहरने हेतु ३ मंजिला इमारत।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – विवेकानन्द विश्वविद्यालय द्वारा ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में टेली-चिकित्सा, टेली-शिक्षा, आदि सेवाएँ पहुँचाने के लिये 'विवेक-दिशा' नामक परियोजना के अन्तर्गत १४ ग्रामीण संसाधन-केन्द्रों की शुरुआत, नरेन्द्रपुर (कोलकाता) केन्द्र के लोकशिक्षा परिषद् द्वारा जैव-विज्ञान विषयक शिक्षा, बंजर भूमि सुधार कार्यक्रम, जैव-विज्ञान संस्थापन हेतु लाक्षा वृक्षों (कुसुम) की खेती, स्कूल-स्वच्छता प्रबन्ध और स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत, कड़पा केन्द्र (आन्ध्र-प्रदेश) द्वारा ग्रामीण विद्यार्थियों के लिये एक नि:शुल्क छात्रावास का निर्माण, आलो (अरुणाचल प्रदेश) केन्द्र द्वारा समीपवर्ती गाँवों में ४ अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों की शुरुआत और राँची (मोराबादी) केन्द्र द्वारा औषधीय वृक्षों की खेती, संघटित जलसम्भार विकास कार्यक्रम जैसे ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों की शुरुआत।

रामकृष्ण मठ के अन्तर्गत इस वर्ष की निम्नलिखित गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – पश्चिम बंगाल में बागदा केन्द्र की शुरुआत, राजकोट (गुजरात) केन्द्र द्वारा भाषा-शिक्षा संस्थान की शुरुआत, अल्सूर (बैंगलोर) केन्द्र द्वारा ४ मंजिला चिकित्सालय की शुरुआत तथा बैंगलोर नगरीय जिले (Bangalore Urban District) के एक गाँव में ७० शौचालयों का निर्माण और कालड़ी (केरल) केन्द्र द्वारा स्कूल के तीन-मंजिले विस्तारित भवन का उद्‌घाटन।

भारत के बाहर कुमिल्ला (बांग्लादेश) में रामकृष्ण का एक नया केन्द्र शुरू किया गया। दक्षिण अफ्रीका स्थित डरबन केन्द्र द्वारा एक बृहत् चिकित्सालय, विक्षिप्त महिलाओं के लिये एक राहत केन्द्र, भोजन वितरण हेतु परिवार कल्याण केन्द्र और अन्तिम बीमारियों से पीड़ित रोगियों के निवास हेतु एक भवन का निर्माण और बांग्लादेश के सिलहट केन्द्र द्वारा बांग्लादेश तकनीकी प्रशिक्षण परिषद् के साथ सम्बन्धन में ३ कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्रों की शुरुआत।

इस वर्ष के दौरान मठ और मिशन ने ३.९७ करोड़ रुपये खर्च करके देश के कई भागों में बृहत् तौर पर राहत तथा पुनर्वास के कार्य किये, जिससे २९७५ गाँवों में रहनेवाले ४.३९ लाख परिवारों के १८.३९ लाख लोग लाभान्वित हुए।

निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति, वृद्ध, बीमार और असहाय लोगों को आर्थिक सहायता आदि कल्याण-कार्यों में ७.०८ करोड़ रुपये व्यय हुए।

१५ अस्पतालों एवं भ्राम्यमान चिकित्सा-इकाइयों सहित १७६ केन्द्रों से ७६.६७ लाख से अधिक रोगियों को चिकित्सा सेवा प्रदान की गयी, जिसके तहत ६९.४४ करोड़ रुपये खर्च हुए।

हमारे शिक्षा-संस्थानों के द्वारा, बाल-विहार से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक, ४.०५ लाख विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की गयी। शिक्षा-कार्य के लिये १२६.७२ करोड़ रुपये खर्च किये गये।

२३.०१ करोड़ रुपये की लागत पर कई ग्रामीण एवं आदिवासी विकास-योजनाओं का भी कार्यान्वयन किया गया।

इस अवसर पर अपने सदस्यों एवं मित्रों के प्रति उनके हार्दिक एवं निरन्तर सहयोग के लिये हम आन्तरिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

स्वामी प्रभानन्द

७ दिसम्बर २००८ — महासचिव